अष्टपाहुड

*

अष्टपाहुड

दर्शनपाहुड

काउण णमुक्कारं, जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स।
दंसणमग्गं वोच्छामि, जहाकमं समासेण।।१।।

मैं आद्य जिनेंद्र श्री ऋषभदेव तथा अंतिम जिनेंद्र श्री वर्द्धमान स्वामीको नमस्कार कर क्रमानुसार संक्षेपसे सम्यग्दर्शनके मार्गको कहूँगा।।१।।

दंसणमूलो धम्मो, उपइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे, दंसणहीणो ण वंदिव्वो।।२।।

श्री जिनेंद्र भगवान्ने शिष्योंके लिए दर्शनमूल धर्मका उपदेश दिया है इसलिए उसे अपने कानोंसे सुनो। जो सम्यग्दर्शनसे रहित है वह वंदना करनेयोग्य नहीं है।।२।।

दंसणभट्ठा भट्ठा, दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा, दंसणभट्ठा ण सिज्झंति।।३।।

जो सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे ही वास्तवमें भ्रष्ट हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट मनुष्यको मोक्ष प्राप्त नहीं होता। जो सम्यक्चारित्रसे भ्रष्ट हैं वे सिद्ध हो जाते हैं परंतु जो सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे सिद्ध नहीं हो सकते।।३।।

सम्मत्तरयणभट्ठा, जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
आराहणाविरहिया, भमंति तत्थेव तत्थेव।।४।।

जो सम्यक्त्वरूपी रत्नसे भ्रष्ट हैं वे बहुत प्रकारके शास्त्रोंको जानते हुए भी आराधनाओंसे रहित होनेके कारण उसी संसारमें भ्रमण करते रहते हैं।।४।।

सम्मत्तविरहियाणं, सुट्ठु वि उग्गं तवं चरंताणं।
ण लहंति बोहिलाहं, अवि वाससहस्सकोडीहिं।।५।।

जो मनुष्य सम्यग्दर्शनसे रहित हैं वे भले ही करोड़ों वर्षोंतक उत्तमतापूर्वक कठिन तपश्चरण करें तो भी उन्हें रत्नत्रय प्राप्त नहीं होता है।।५।।

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।

कलिकलुसपावरहिया, वरणाणी होंति अइरेण।।६।।

जो पुरुष सम्यक्त्व, ज्ञांन, दर्शन, बल और वीर्यसे वृद्धिको प्राप्त हैं तथा कलिकाल संबंधी मलिन पापसे रहित हैं वे सब शीघ्र ही उत्कृष्ट ज्ञानी हो जाते हैं।।६।।

सम्मत्तसलिलपवहे, णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।

कम्मं वालुयवरणं, बंधुच्चिय णासए तस्स।।७।।

जिस मनुष्यके हृदयमें सम्यक्त्वरूपी जलका प्रवाह निरंतर प्रवाहित होता है उसका पूर्वबंधसे संचित कर्मरूपी बालूका आवरण नष्ट हो जाता है।।७।।

जे दंसणेसु भट्ठा, णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।

ऐदे भट्ठविभट्ठा, सेसं पि जणं विणासंति।।८।।

जो मनुष्य दर्शनसे भ्रष्ट हैं, ज्ञानसे भ्रष्ट हैं और चारित्रसे भ्रष्ट हैं वे भ्रष्टोंमें भ्रष्ट हैं -- अत्यंत भ्रष्ट हैं तथा अन्य जनोंको भी भ्रष्ट करते हैं।।८।।

जो कोवि धम्मसीलो, संजमतवणियमजोयगुणधारी।

तस्स य दोस कहंता, भग्गा भग्गत्तणं दिंति।।९।।

जो कोई धर्मात्मा संयम, तप, नियम और योग आदि गुणोंका धारक है उसके दोषोंको कहते हुए क्षुद्र मनुष्य स्वयं भ्रष्ट हैं तथा दूसरोंको भी भ्रष्टता प्रदान करते हैं।।९।।

जह मूलम्मि विणट्ठे, दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।

तह जिणदंसणभट्ठा, मूलविणट्ठा ण सिज्झंति।।१०।।

जैसे जड़के नष्ट हो जानेपर वृक्षके परिवारकी वृद्धि नहीं होती वैसे ही जो पुरुष जिनदर्शनसे भ्रष्ट हैं वे मूलसे विनष्ट हैं -- उनका मूल धर्म नष्ट हो चुका है, अतः ऐसे जीव सिद्ध अवस्थाको प्राप्त नहीं हो पाते हैं।।१०।।

जह मूलाओ खंधो, साहापरिवार बहुगुणो होई।

तह जिणदंसणमूलो, णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स।।११।।

जिस प्रकार वृक्षकी जड़से शाखा आदि परिवारसे युक्त कई गुणा स्कंध उत्पन्न होता है उसी प्रकार मोक्षमार्गकी जड़ जिनदर्शन -- जिनधर्मका श्रद्धान है ऐसा कहा गया है।।११।।

जे दंसणेसु भट्ठा, पाए पाडंति दंसणधराणं।

ते होंति लुल्लमूआ, बोही पुण दुल्लहा तेसिं।।१२।।

जो मनुष्य स्वयं सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट होकर अपने चरणोंमें सम्यग्दृष्टियोंको पाड़ते हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टियोंसे अपने चरणोंमें नमस्कार कराते हैं वे लूले और गूँगे होते हैं तथा उन्हें रत्नत्रय अत्यंत दुर्लभ रहता है। यहाँ लूले और गूँगेसे तात्पर्य स्थावर जीवोंसे है क्योंकि यथार्थमें वे ही गतिरहित तथा शब्दहीन होते हैं।।१२।।

जे वि पडंति च तेसिं, जाणंता लज्जगारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोही, पावं अणुमोयमाणाणं।।१३।।

जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंको जानते हुए भी लज्जा, गौरव और भयसे उनके चरणोंमें पड़ते हैं वे भी पापकी अनुमोदना करते हैं अतः उन्हें रत्नत्रयकी प्राप्ति नहीं होती।।१३।।

दुविहं पि गंथचायं, तीसुवि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे, उब्भसणे दंसणं होई।।१४।।

जहाँ अंतरंग और बहिरंगके भेदसे दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग होता है, मन वचन काय इन तीनों योगोंमें संयम स्थित रहता है, ज्ञान कृत, कारित, अनुमोदनासे शुद्ध रहता है और खड़े होकर भोजन किया जाता है वहाँ सम्यग्दर्शन होता है।।१४।।

सम्मत्तादो णाणं, णाणादो सव्वभाव उवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण, सेयासेयं वियाणेदि।।१५।।

सम्यग्दर्शनसे सम्यग्ज्ञान होता है, सम्यग्ज्ञानसे समस्त पदार्थोंकी उपलब्धि होती है और समस्त पदार्थोंकी उपलब्धि होनेसे यह जीव सेव्य तथा असेव्यको -- कर्तव्य-अकर्तव्यको जानने लगता है।।१५।।

सेयासेयविदण्हू, उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं, तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं।।१६।।

सेव्य और असेव्यको जाननेवाला पुरुष अपने मिथ्या स्वभावको नष्ट कर शीलवान् हो जाता है तथा शीलके फलस्वरूप स्वर्गादि अभ्युदयको पाकर फिर निर्वाणको प्राप्त हो जाता है।।१६।।

जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणवाहिहरणं, खयकरणं सव्वदुक्खाणं।।१७।।

यह जिनवचनरूपी औषधि विषयसुखको दूर करनेवाली है, अमृतरूप है, बुढ़ापा, मरण आदिकी पीड़ाको हरनेवाली है तथा समस्त दुःखोंका क्षय करनेवाली है।।१७।।

एगं जिणस्स रूवं, बीयं उक्किट्ठसावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं, चउत्थ पुण लिंगदंसणं णत्थि।।१८।।

जिनमतमें तीन लिंग -- वेष बतलाये हैं, उनमें एक तो जिनेंद्रभगवान्का निर्ग्रंथ लिंग है, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों -- ऐलक क्षुल्लकोंका है और तीसरा आर्यिकाओंका है, इसके सिवाय चौथा लिंग नहीं है।।१८।।

छह दव्व णव पयत्था, पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा ।
सद्दहइ ताण रूवं, सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो।।१९।।

छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्व कहे गये हैं। जो उनके स्वरूपका श्रद्धान करता है उसे सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।।१९।।

जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो, अप्पाणं हवइ सम्मत्तं।।२०।।

जिनेंद्र भगवान्ने सात तत्त्वोंके श्रद्धानको व्यवहार सम्यक्त्व कहा है और शुद्ध आत्माके श्रद्धानको निश्चय सम्यक्त्व बतलाया है।।२०।।

एवं जिणपण्णत्तं, दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय, सोवाणं पढम मोक्खस्स।।२१।।

इस प्रकार जिनेंद्र भगवान्के द्वारा कहा हुआ सम्यग्दर्शन रत्नत्रयमें साररूप है और मोक्षकी पहली सीढ़ी है, इसलिए हे भव्य जीवो! उसे अच्छे अभिप्रायसे धारण करो।।२१।।

जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहि भणियं, सद्दहमाणस्स सम्मत्तं।।२२।।

जितना चारित्र धारण किया जा सकता है उतना धारण करना चाहिए और जितना धारण नहीं किया जा सकता उसका श्रद्धान करना चाहिए, क्योंकि केवलज्ञानी जिनेंद्र देवने श्रद्धान करनेवालोंके सम्यग्दर्शन बतलाया है।।२२।।

दंसणणाणचरित्ते, तवविणये णिच्चकालसुपसत्था।
एदे दु वंदणीया, जे गुणवादी गुणधराणं।।२३।।

जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप तथा विनयमें निरंतर लीन रहते हैं और गुणोंके धारक आचार्य आदिका गुणगान करते हैं वे वंदना करनेयोग्य -- पूज्य हैं।।२३।।

सहजुप्पण्णं रूवं, दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो, मिच्छाइट्ठी हवइ एसो।।२४।।

मात्सर्य भावमें भरा हुआ जो पुरुष जिनेंद्रभगवान्के सहजोत्पन्न -- दिगंबर रूपको देखनेके योग्य

नहीं मानता वह संयमी होनेपर भी मिथ्यादृष्टि है।।२४।।

अमराण वंदियाणं, रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।
ये गारवं करंति य, सम्मत्तविवज्जिया होंति।।२५।।

शीलसहित तथा देवोंके द्वारा वंदनीय जिनेंद्र देवके रूपको देखकर जो अपना गौरव करते हैं-- अपनेको बड़ा मानते हैं वे भी सम्यग्दर्शनसे रहित हैं।।२५।।

असंजदं ण वंदे, वच्छविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णिवि होंति समाणा, एगो वि ण संजदो होदि।।२६।।

असंयमीको वंदना नहीं करनी चाहिए और भावसे सहित बाह्य नग्न रूपको धारण करनेवाला भी वंदनीय नहीं है। क्योंकि वे दोनों ही समान हैं, उनमें एक भी संयमी नहीं है।।२६।।

ण वि देहो वंदिज्जइ, ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुणहीणो, णहु सवणो णेव सावओ होइ।।२७।।

न शरीरकी वंदना की जाती है, न कुलकी वंदना की जाती है और न जातिसंयुक्तकी वंदना की जाती है। गुणहीनकी कौन वंदना करता है? क्योंकि गुणोंके बिना न मुनि होता है और न श्रावक होता है।।२७।।

वंदमि तवसावण्णा, सीलं च गुणं च बंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं, सम्मत्तेण सुद्धभावेण।।२८।।

मैं तपस्वी साधुओंको, उनके शीलको, मूलोत्तर गुणोंको, ब्रह्मचर्यको और मुक्तिगमनको सम्यक्त्वसहित शुद्ध भावसे वंदना करता हूँ।।२८।।

चउसट्ठिचमरसहिओ, चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो।
अणवरबहुसत्तहिओ, कम्मक्खय कारणणिमित्तो।।२९।।

जो चौंसठ चमरसहित हैं, चौंतीस अतिशयोंसे युक्त हैं, निरंतर प्राणियोंका हित करनेवाले हैं और कर्मक्षयके कारण हैं ऐसे तीर्थंकर परमदेव वंदनाके योग्य हैं।।२९।।

णाणेण दंसणेण य, तवेण चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोग्गे, मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो।।३०।।

ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र इन चार गुणोंसे संयम होता है और इन चारोंका समागम होनेपर मोक्ष होता है ऐसा जिनशासनमें कहा है।।३०।।

णाणं णरस्स सारो, सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं, चरणाओ होइ णिव्वाणं।।३१।।

सर्वप्रथम मनुष्यके लिए ज्ञान सार है और ज्ञानसे भी अधिक सार सम्यग्दर्शन है, क्योंकि सम्यग्दर्शनसे सम्यक्चारित्र होता है और सम्यक्चारित्रसे निर्वाण होता है।।३१।।

णाणम्मि दंसणम्मि य, तवेण चरियेण सम्मसहियेण।
चोण्हं हि समाजोगे, सिद्धा जीवा ण संदेहो।।३२।।

ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्वसहित तप और चारित्र इन चारोंके समागम होनेपरही जीव सिद्ध हुए हैं इसमें संदेह नहीं है।।३२।।

कल्लाणपरंपरया, कहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं।
सम्मद्दंसणरयणं, अग्घेदि सुरासुरे लोए।।३३।।

जीव कल्याणकी परंपराके साथ निर्मल सम्यक्त्वको प्राप्त करते हैं, इसलिए सम्यग्दर्शनरूपी रत्न लोकमें देव-दानवोंके द्वारा पूजा जाता है।।३३।।

लद्धूण य मणुयत्तं, सहियं तह उत्तमेण गुत्तेण।
लद्धूण य सम्मत्तं, अक्खय सुक्खं च मोक्खं च।।३४।।

यह जीव उत्तम गोत्रसहित मनुष्य पर्यायको पाकर तथा वहाँ सम्यक्त्वको प्राप्त कर अक्षय सुख और मोक्षको प्राप्त होता है।।३४।।

विहरदि जाव जिणिंदो, सहसट्ठ सुलक्खणेहिं संजुत्तो।
चउतीस अतिसयजुदो, सा पडिया थावरा भणिया।।३५।।

एक हजार आठ लक्षणों और चौंतीस अतिशयोंसे सहित जिनेंद्र भगवान् जब तक विहार करते हैं तब तक उन्हें स्थावर प्रतिमा कहते हैं।।३५।।

बारसविहतवजुत्ता, कम्मं खविऊण विहिवलेण स्सं।
वोसट्टचत्तदेहा, णिव्वाणमणुत्तरं पत्ता।।३६।।

जो बारह प्रकारके तपसे युक्त हो विधिपूर्वक अपने कर्मोंका क्षय कर व्युत्सर्ग --निर्ममतासे शरीर छोड़ते हैं वे सर्वोत्कृष्ट मोक्षको प्राप्त होते हैं।।३६।।

इस प्रकार दर्शनपाहुड समाप्त हुआ।

***

सूत्रपाहुड

अरहंतभासियत्थं, गणधरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं, सवणा साहंति परमत्थं।।१।।

जिसका प्रतिपादनीय अर्थ अर्हंतदेवके द्वारा कहा गया है, जो गणधरदेवोंके द्वारा अच्छी तरह रचा गया है और आगमके अर्थका अन्वेषण ही जिसका प्रयोजन है ऐसे परमार्थभूत सूत्रको मुनि सिद्ध करते हैं।।१।।

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं, आइरियपरंपरेण मग्गेण।
णाऊण दुविहसुत्तं, वट्टइ सिवमग्ग जो भव्वो।।२।।

द्वादशांग सूत्रमें आचार्योंकी परंपरासे जिसका उपदेश हुआ है ऐसे शब्द-अर्थरूप द्विविध श्रुतको जानकर जो मोक्षमार्गमें प्रवृत्त होता है वह भव्य जीव है।।२।।

सुत्तम्मि जाणमाणो, भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता, णासदि सुत्ते सहा णोवि।।३।।

जो मनुष्य सूत्रके जाननेमें निपुण है वह संसारका नाश करता है। जैसे सूत्र -- डोरासे रहित सूई नष्ट हो जाती है और सूत्रसहित सुई नष्ट नहीं होती।।३।।

पुरिसो वि जो ससुत्तो, ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेयणपच्चक्खं, णासदि तं सो अदिस्समाणो वि।।४।।

वैसे ही जो पुरुष सूत्र -- आगमसे सहित है वह चतुर्गतिरूप संसारके मध्य स्थित होता हुआ भी नष्ट नहीं होता है। भले ही वह दूसरोंके नाम द्वारा दृश्यमान न हो फिर भी स्वात्माके प्रत्यक्षसे वह उस संसारको नष्ट करता है।।४।।

सुत्तत्थं जिणभणियं, जीवाजीवादि बहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा, जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी।।५।।

जो मनुष्य जिनेंद्र भगवान्‌के द्वारा कहे गये सूत्रके अर्थको, जीव-अजीवादि बहुत प्रकारके पदार्थोंको तथा हेय-उपादेय तत्त्वको जानता है वही वास्तवमें सम्यग्दृष्टि है।।५।।

जं सुत्तं जिणउत्तं, ववहारो तह जाण परमत्थो।
तं जाणिऊण सोई, लहइ सुहं खवइ मलपुंजं।।६।।

जो सूत्र जिनेंद्र भगवान्‌के द्वारा कहा गया है उसे व्यवहार तथा निश्चयसे जानो। उसे जानकर ही

योगी सुख प्राप्त करता है और मलके समूहको नष्ट करता है।।६।।

सूत्तत्थपयविणट्ठो, मिच्छाइट्ठी हु सो पुणेयव्वो।
खेडेवि ण कायव्वं, पाणिप्पत्तं सचेलस्स।।७।।

जो मनुष्य सूत्रके अर्थ और पदसे रहित है उसे मिथ्यादृष्टि मानना चाहिए। इसलिए वस्त्रसहित मुनिको खेलमें भी पाणिपात्र भोजन नहीं करना चाहिए।।७।।

हरिहरतुल्लोवि णरो, सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं, संसारत्थो पुणो भणिदो।।८।।

जो मनुष्य सूत्रके अर्थसे रहित है वह हरि-हरके तुल्य होनेपर भी स्वर्गको प्राप्त होता है, करोड़ों पर्याय धारण करता है, परंतु मुक्तिको प्राप्त नहीं होता। वह संसारी ही कहा गया है।।८।।

उक्किट्ठसीहचरियं, बहुपरियम्मो य गरुयभारो य।
जो विहरइ सच्छंदं, पावं गच्छदि होदि मिच्छत्तं।।९।।

जो मनुष्य उत्कृष्ट सिंहके समान निर्भय चर्या करता है, बहुत तपश्चरणादि परिकर्म करता है, बहुत भारी भारसे सहित है और स्वच्छंद -- आगमके प्रतिकूल विहार करता है वह पापको प्राप्त होता है तथा मिथ्यादृष्टि है।।९।।

णिच्चेलपाणिपत्तं, उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो, सेसा य अमग्गया सव्वे।।१०।।

परमोत्कृष्ट श्री जिनेंद्र भगवान्ने वस्त्ररहित -- दिगंबर मुद्रा और पाणिपात्रका जो उपदेश दिया है वही एक मोक्षका मार्ग है और अन्य सब अमार्ग है।।१०।।

जो संजमेसु सहिओ, आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ, ससुरासुरमाणुसे लोए।।११।।

जो संयमोंसे सहित है तथा आरंभ और परिग्रहसे विरत है वही सुर असुर एवं मनुष्य सहित लोकमें वंदना करनेयोग्य है।।११।।

जे बावीसपरीषह, सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति वंदणीया, कम्मक्खयणिज्जरा साहू।।१२।।

जो मुनि सैकडों शक्तियोंसे सहित हैं, बाईस परिषह सहन करते हैं और कर्मोंका क्षय तथा निर्जरा करते हैं वे मुनि वंदना करनेके योग्य हैं।।१२।।

अवसेसा जे लिंगी, दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया, ते भणिया इच्छणिज्जा य।।१३।।

दिगंबर मुद्राके सिवाय जो अन्य लिंगी है, सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शनसे संयुक्त है तथा वस्त्रमात्रके द्वारा परिग्रही हैं वे उत्कृष्ट श्रावक इच्छाकार कहने योग्य हैं अर्थात् उनसे इच्छामि या इच्छाकार करना चाहिए।।१३।।

इच्छायारमहत्थं, सुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ठिय सम्मत्तं, परलोयसुहंकरो होई।।१४।।

जो पुरुष सूत्रमें स्थित होता हुआ इच्छाकार शब्दके महान् अर्थको जानता है, आरंभ आदि समस्त कार्य छोड़ता है और सम्यक्त्वसहित श्रावकके पदमें स्थिर रहता है वह परलोकमें सुखी होता है।।१४।।

अह पुण अप्पा णिच्छदि, धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं।
तहवि ण पावइ सिद्धिं, संसारत्थो पुणो भणिदो।।१५।।

जो आत्माको तो नहीं चाहता है किंतु अन्य समस्त धर्मादि कार्य करता है वह इतना करनेपर भी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता है वह संसारी कहा गया है।।१५।।

एएण कारणेण य, तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेइ मोक्खं, तं जाणिज्जइ पयत्तेण।।१६।।

इस कारण उस आत्माका मन वचन कायसे श्रद्धान करो। क्योंकि जिससे मोक्ष प्राप्त होता है उसे प्रयत्नपूर्वक जानना चाहिए।।१६।।

बालग्गकोडिमेत्तं, परिगहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते, दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि।।१७।।

मुनियोंके बालके अग्रभागके बराबर भी परिग्रहका ग्रहण नहीं होता है वे एक ही स्थानमें दूसरोंके द्वारा दिये हुए प्रासुक अन्नको अपने हाथरूपी पात्रमें ग्रहण करते हैं।।१७।।

जहजायरूवसरिसो, तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं, तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं।।१८।।

जो मुनि यथाजात बालकके समान नग्न मुद्राके धारक हैं वे अपने हाथमें तिलतुषमात्र भी परिग्रह ग्रहण नहीं करते। यदि वे थोड़ा बहुत परिग्रह ग्रहण करते हैं तो निगोद जाते हैं अर्थात् निगोद पर्यायमें उत्पन्न होते हैं।।१८।।

जस्स परिग्गहगहणं, अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे, परिगहरहिओ निरायारो।।१९।।

जिस लिंगमें थोड़ा बहुत परिग्रहका ग्रहण होता है वह निंदनीय लिंग है। क्योंकि जिनागममें

परिग्रहरहितको ही निर्दोष साधु माना गया है।।१९।।

पंचमहव्वयजुत्तो, तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।

णिग्गंथमोक्खमग्गो, सो होदि हु वंदणिज्जो य।।२०।।

जो मुनि पाँच महाव्रतसे युक्त और तीन गुप्तियोंसे सहित है वही संयमी होता है। वही निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग है और वही वंदना करनेके योग्य है।।२०।।

दुइयं च उत्तलिंगं, उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।

भिक्खं भमेइ पत्ते, समिदीभासेण मोणेण।।२१।।

दूसरा लिंग ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावकोंका है जो भिक्षाके लिए भाषा समिति अथवा मौनपूर्वक भ्रमण करते हैं और पात्रमें भोजन करते हैं।।२१।।

लिंगं इत्थीण हवदि, भुंजइ पिंडं सु एयकालम्मि।

अज्जिय वि एकवत्था, वत्थावरणेण भुंजेइ।।२२।।

तीसरा लिंग स्त्रियोंका अर्थात् क्षुल्लिकाओंका है। वे दिनमें एक ही बार भोजन करती हैं। आर्यिका एक ही वस्त्र रखती हैं और वस्त्र सहित ही भोजन करती हैं।।२२।।

णवि सिज्झइ वत्थधरो, जिणसासणे जइवि होइ तित्थयरो।

णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे।।२३।।

जिनशासनमें ऐसा कहा है कि वस्त्रधारी यदि तीर्थंकर भी हो भी वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। एक नग्न वेष ही मोक्षमार्ग है, बाकी सब उन्मार्ग है -- मिथ्यामार्ग है।।२३।।

लिगम्मि य इत्थीणं, थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।

भणिओ सुहमो काओ, तासिं कह होइ पव्वज्जा।।२४।।

स्त्रियोंके योनि, स्तनोंका मध्य, नाभि तथा कांख आदि स्थानोंमें सूक्ष्म जीव कहे गये हैं अतः उनके प्रव्रज्या -- महाव्रतरूप दीक्षा कैसे हो सकती है?।।२४।।

जइ दंसणेण सुद्धा, उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता।

घोरं चरिय चरित्तं, इत्थीसु ण पव्वया भणिया।।२५।।

स्त्रियोंमें यदि कोई सम्यग्दर्शनसे शुद्ध है तो वह भी मोक्षमार्गसे युक्त कही गयी है। वह यद्यपि घोर चरित्रका आचरण कर सकती है तो भी उसके मोक्षोपयोगी प्रव्रज्या नहीं कही गयी है।

भावार्थ -- सम्यग्दृष्टि स्त्री सोलहवें स्वर्ग तक ही उत्पन्न हो सकती है, आगे नहीं। अतः उसके मोक्षमार्गोपयोगी दीक्षाका विधान नहीं है। हाँ, आर्यिकाका व्रत उन्हें प्राप्त होता है और उपचारसे वे महाव्रतकी

धारक भी कही जाती हैं।।२५।।

चित्तासोहि ण तेसिं, ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं, इत्थीसु ण संकया झाणं।।२६।।

स्त्रियोंका मन शुद्ध नहीं होता, उनका परिणाम स्वभावसे ही शिथिल होता है, उनके प्रत्येक मासमें मासिक धर्म होता है और सदा भीरु प्रकृति होनेसे उनके ध्यान नहीं होता है।।२६।।

माहेण अप्पगाहा, समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहु णियत्ता, ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं।।२७।।

जिसप्रकार कोई मनुष्य अपना वस्त्र धोनेके लिए समुद्रके जलमेंसे थोड़ा जल ग्रहण करता है, उसी प्रकार जो ग्रहण करनेयोग्य आहारादिमेंसे थोड़ा आहारादि ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार जिन मुनियोंकी इच्छा निवृत्त हो गयी है उनके सब दुःख निवृत्त हो गये हैं।।२७।।

इस प्रकार सूत्रपाहुड समाप्त हुआ।

***

चारित्रपाहुड

सव्वण्हु सव्वदंसी, णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी।
वंदित्तु तिजगवंदा, अरहंता भव्वजीवेहिं।।१।।
णाणं दंसण सम्मं, चारित्तं सोहिकारणं तेसिं।
मुक्खाराहणहेउं, चारित्तं पाहुडं वोच्छे।।२।।

मैं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, निर्मोह, वीतराग, परमपदमें स्थित, त्रिजगत्के द्वारा वंदनीय, भव्यजीवोंके द्वारा पूज्य अरहंतोंको वंदना कर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी शुद्धिका कारण तथा मोक्षप्राप्तिका हेतु रूप चारित्रपाहुड कहूँगा।।१-२।।

जं जाणइ तं णाणं, जं पिच्छइ तं च दंसणं भणियं।
णाणस्स पिच्छियस्स य, समवण्णा होइ चारित्तं।।३।।

जो जानता है वह ज्ञान है, जो देखता है अर्थात् श्रद्धान करता है वह दर्शन कहा गया है। तथा ज्ञान और दर्शनके संयोगसे चारित्र होता है।।३।।

एए तिण्णिवि भावा, हवंति जीवस्स अक्खयामेया।
तिण्हं पि सोहणत्थे, जिणभणियं दुविह चारित्तं।।४।।

जीवके ये ज्ञानादिक तीनों भाव अक्षय तथा अमेय होते हैं। इन तीनोंकी शुद्धिके लिए जिनेंद्र भगवान्ने दो प्रकारका चारित्र कहा है।।४।।

जिणणाणदिट्ठिसुद्धं, पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं।
बिदियं संजमचरणं, जिणणाणसदेसियं तं पि।।५।।

इनमें पहला सम्यक्त्वके आचरणरूप चारित्र है जो जिनेद्रभाषित ज्ञान और दर्शनसे शुद्ध है तथा दूसरा संयमके आचरणरूप चारित्र है वह भी जिनेंद्र भगवान्के ज्ञानसे उपदेशित तथा शुद्ध है।।५।।

एवं चिय णाऊण य, सव्वे मिच्छत्तदोससंकाइ।
परिहरि सम्मत्तमला, जिणभणिया तिविहजोएण।।६।।

इस प्रकार जानकर जिनदेवसे कहे हुए मिथ्यात्वके उदयमें होनेवाले शंकादि दोषोंको तथा त्रिमूढ़ता आदि सम्यक्त्वके सब मलोंका मन वचन कायसे छोड़ो।।६।।

णिस्संकिय णिक्कंखिय, णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ठिदिकरणं, वच्छल्लपहावणा य ते अट्ठ।।७।।

निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सता, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये सम्यग्दर्शनके आठ अंग अथवा गुण हैं।।७।।

तं चेव गुणविसुद्धं, जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाय।
जं चरइ णाणजुत्तं, पढमं सम्मत्तचारित्तं।।८।।

वही जिन भगवान्का श्रद्धान जब निःशंकित आदि गुणोंसे विशुद्ध तथा यथार्थ ज्ञानसे युक्त होता तब प्रथम सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहलाता है। यह सम्यक्त्वाचरण चारित्र मोक्षप्राप्तिका साधन है।।८।।

सम्मत्तचरणसुद्धा, संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा।
णाणी अमूढदिट्ठी, अचिरे पावंति णिव्वाणं।।९।।

जो सम्यक्त्वाचरण चारित्रसे शुद्ध है, ज्ञानी है और मूढ़तारहित है वे यदि संयमचरण चारित्रसे युक्त हों तो शीघ्र ही निर्वाणको प्राप्त होते हैं।।१०।।

सम्मत्तचरणभट्ठा, संजमचरणं चरंति जे वि णरा।
अण्णाणणाणमूढा, तहवि ण पावंति णिव्वाणं।।११।।

जो मनुष्य सम्यक्त्वचरण चारित्रसे भ्रष्ट हैं किंतु संयमचरण चारित्रका आचरण करते हैं वे

मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञानके विषयमें मूढ़ होनेके कारण निर्वाणको नहीं पाते हैं।।१०।।

वच्छल्लं विणएण य, अणुकंपाए सुदाणदच्छाए।
मग्गणगुणसंसणाए, उवगूहण रक्खणाए य।।११।।
एएहिं लक्खणेहिं य, लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं।
जीवो आराहंतो, जिणसम्मत्तं अमोहेण।।१२।।

मोहका अभाव होनेसे जिनोपदिष्ट सम्यक्त्वकी आराधना करनेवाला सम्यग्दृष्टि पुरुष वात्सल्य, विनय, दान देनेमें दक्ष, दया, मोक्षमार्गकी प्रशंसा, उपगूहन, संरक्षण -- स्थितीकरण और आर्जवभाव इन लक्षणोंसे जाना जाता है।।११-१२।।

उच्छाहभावणासंपसंससेवा कुदंसणे सद्धा।
अण्णाणमोहमग्गे, कुव्वंतो जहदि जिणधम्मं।।१३।।

अज्ञान और मोहके मार्गरूप मिथ्यामतमें उत्साह, भावना, प्रशंसा, सेवा और श्रद्धा करता हुआ पुरुष जिनोपदिष्ट सम्यक्त्वको छोड़ देता है।।१३।।

उच्छाहभावणासंपसंससेवा सुदंसणे सद्धा।
ण जहदि जिणसम्मत्तं, कुव्वंतो णाणमग्गेण।।१४।।

समीचीन मतमें ज्ञानमार्गके द्वारा उत्साह, भावना, प्रशंसा, सेवा और श्रद्धाको करता हुआ पुरुष जिनोपदिष्ट सम्यक्त्वको नहीं छोड़ता है।।१४।।

अण्णाणं मिच्छत्तं, वज्जहि णाणे विसुद्धसम्मत्ते।
अह मोहं सारंभं, परिहर धम्मे अहिंसाए।।१५।।

हे भव्य! तू ज्ञानके होनेपर अज्ञानको, विशुद्ध सम्यक्त्वके होनेपर मिथ्यात्वको और अहिंसाधर्मके होनेपर आरंभसहित मोहको छोड़ दे।।१५।।

पव्वज्ज संगचाए, पयट्ट सुतवे सुसंजमे भावे।
होइ सुविसुद्धझाणं, णिम्मोहे वीयरायत्ते।।१६।।

हे भव्य! तू परिग्रहका त्याग होनेपर दीक्षा ग्रहण कर, और उत्तम संयमभावके होनेपर श्रेष्ठ तपमें प्रवृत्त हो, क्योंकि मोहरहित वीतरागभावके होनेपर ही अत्यंत विशुद्ध ध्यान होता है।।१६।।

मिच्छादंसणमग्गे, मलिणे अण्णाणमोहदोसेहिं।
बज्झंति मूढजीवा, मिच्छत्ताबुद्धिउदएण।।१७।।

मूढ़जीव, अज्ञान और मोहरूपी दोषोंसे मलिन मिथ्यादर्शनके मार्गमें मिथ्यात्व तथा मिथ्याज्ञानके

उदयसे लीन होते हैं।।१७।।

सम्मद्दंसण पस्सदि, जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मेण य सद्दहदि य, परिहरदि चारित्तजे दोसे।।१८।।

जब यह जीव समीचीन दर्शनके द्वारा सामान्य सत्तात्मक पदार्थोंको देखता है, सम्यग्ज्ञानके द्वारा द्रव्य और पर्यायोंको जानता है तथा सम्यग्दर्शनके द्वारा उनका श्रद्धान करता है तभी चारित्रसंबंधी दोषोंको छोड़ता है।।१८।।

एए तिण्णि वि भावा, हवंति जीवस्स मोहरहियस्स।
णियगुणमाराहंतो, अचिरेण वि कम्म परिहरइ।।१९।।

ये तीनों भाव -- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोहरहित जीवके होते हैं। आत्मगुणकी आराधना करनेवाला निर्मोह जीव शीघ्र ही कर्मोंका नाश करता है।।१९।।

संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरूमत्ता णं।
सम्मत्तमणुचरंता, करंति दुक्खक्खयं धीरा।।२०।।

सम्यक्त्वका आचरण करनेवाले धीर वीर पुरुष संसारी जीवोंकी मर्यादारूप कर्मोंकी संख्यातगुणी तथा असंख्यातगुणी निर्जरा करते हुए दुःखोंका क्षय करते हैं।।२०।।

दुविहं संजमचरणं, सायारं तह हवे णिरायारं।
सायारं सग्गंथे, परिग्गहारहिय खलु णिरायारं।।२१।।

सागार और निरागारके भेदसे संयमचरण चारित्र दो प्रकारका होता है। उनमेंसे सागार चारित्र परिग्रहसहित श्रावकके होता है और निरागार चारित्र परिग्रहरहित मुनिके होता है।।२१।।

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त रायभत्ते य।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य।।२२।।

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग, ब्रह्मचर्य, अनुमतित्याग, और उद्दिष्टत्याग ये ग्यारह भेद देशविरत -- श्रावकके हैं।।२२।।

पंचेवणुव्वयाइं, गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि य, संजमचरणं च सायारं।।२३।।

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इस तरह बारह प्रकारका सागार संयमचरण चारित्र है।।२३।।

थूले तसकायवहे, थूले मोसे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला, परिग्गहारंभपरिमाणं।।२४।।

त्रस विघातरूप स्थूल हिंसा, स्थूल असत्य, स्थूल अदत्तग्रहण तथा परस्त्रीसेवनका त्याग करना एवं परिग्रह एवं आरंभका परिमाण करना ये क्रमशः अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहपरिमाणाणुव्रत हैं।।२४।।

दिसिविदिसमाण पढमं, अणत्थदंडस्स वज्जणं बिदियं।
भोगोगभोगपरिमा, इयमेव गुणव्वया तिण्णि।।२५।।

दिशाओं और विदिशाओंमें गमनागमनका प्रमाण करना सो पहला दिग्व्रत नामा गुणव्रत है। अनर्थदंडका त्याग करना सो दूसरा अनर्थदंडनामा गुणव्रत है और भोग-उपभोगका परिमाण करना सो तीसरा भोगोपभोगपरिमाण नामा गुणव्रत है। इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं।।२५।।

सामाइयं च पढमं, बिदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं च अतिहिपुज्जं, चउत्थ सल्लेहणा अंते।।२६।।

सामायिक पहला शिक्षाव्रत है, प्रोषध दूसरा शिक्षाव्रत कहा गया है, अतिथिपूजा तीसरा शिक्षाव्रत है और जीवनके अंतमें सल्लेखना धारण करना चौथा शिक्षाव्रत है।।२६।।

एवं सावयधम्मं, संजमचरणं उदेसियं सयलं।
सुद्धं संजमचरणं, जइधम्मं णिक्कलं वोच्छे।।२७।।

इस प्रकार श्रावकधर्मरूप संयमचरणका निरूपण किया। अब आगे यतिधर्मरूप सकल, शुद्ध और निष्फल संयमचरणका निरूपण करूँगा।।२७।।

पंचिंदियसंवरणं, पंचवया पंचविंसकिरियासु।
पंच समिदि तयगुत्ती, संजमचरणं णिरायारं।।२८।।

पाँच इंद्रियोंका दमन, पाँच व्रत, इनकी पच्चीस भावनाएँ, पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ यह निरागार संयमचरण चारित्र है।।२८।।

अमणुण्णे य मणुण्णे, सजीवदव्वे अजीवदव्वे य।
ण करेइ रायदोसे, पंचेंदियसंवरो भणिओ।।२९।।

अमनोज्ञ और मनोज्ञ स्त्रीपुत्रादि सजीव द्रव्योंमें तथा गृह, सुवर्ण, रजत आदि अजीव द्रव्योंमें जो राग द्वेष नहीं करता है वह पंचेंद्रियोंका संवर कहा गया है।।२९।।

हिंसाविरइ अहिंसा, असच्चविरई अदत्तविरई य ।
तुरियं अबंभविरई, पंचम संगम्मि विरई य।।३०।।

हिंसाका त्याग अहिंसा महाव्रत है। असत्यका त्याग सत्य महाव्रत है। अदत्त वस्तुका त्याग अचौर्य महाव्रत है। कुशीलविरत होना ब्रह्मचर्य महाव्रत है और परिग्रहसे विरत होना अपरिग्रह महाव्रत

है।।३०।।

साहंति जं महल्ला, आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं।

जं च महल्लाणि तदो, महव्वया महहे याइं।। ३१।।

जिन्हें महापुरुष धारण करते हैं, जो पहले महापुरुषोंके द्वारा धारण किये गये हैं और जो स्वयं महान हैं।।३१।।

वयगुत्ती मणगुत्ती, इरियासमिदी सुदाणणिरवेक्खो।

अवलोयभोयणाए, अहिंसए भावणा होंति।।३२।।

१. वचनगुप्ति, २. मनोगुप्ति, ३. कायगुप्ति, ४. सुदाननिक्षेप और ५. आलोकितभोजन ये अहिंसाव्रतकी पाँच भावनाएँ हैं।।३२।।

कोहभयहासलोहापोहाविवरीयभासणा चेव।

बिदियस्स भावणाए, ए पंचेव य तहा होंति।।३३।।

क्रोधत्याग, भयत्याग, हासत्याग, लोभत्याग और अनुवीचिभाषण (आगमानुकूल भाषण) ये सत्यव्रतकी भावनाएँ हैं।।३३।।

सुण्णायारणिवासो, विमोचितावास जं परोधं च ।

एसणसुद्धिसउत्तं, साहम्मीसंविसंवादो।।३४।।

शून्यागारनिवास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, एषणशुद्धि और सधर्माविसंवाद ये पाँच अचौर्यव्रतकी भावनाएँ हैं।।३४।।

महिलालोयणपुव्वरइसरणससत्तवसहि विकहाहिं।

पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि।।३५।।

रागभावपूर्वक स्त्रियोंके देखनेसे विरक्त होना, पूर्वरतिके स्मरणका त्याग करना, स्त्रियोंसे संसक्त वसतिका त्याग करना, विकथाओंसे विरत होना और पुष्टिकर भोजनका त्याग करना ये पाँच ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनाएँ हैं।।३५।।

अपरिग्गहसमणुण्णेसु, सद्दपरिसरसरूवगंधेसु।

रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति।।३६।।

मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप, और गंधमें रागद्वेष आदिका त्याग करना ये पाँच परिग्रहत्याग व्रत की भावनाएँ हैं।।३६।।

इरियाभासाएसण, जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।

संजमसोहिणिमित्ते, खंति जिणा पंचसमिदीओ।।३७।

ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण तथा प्रतिष्ठापन ये पाँच समितियाँ संयमकी शुद्धिके लिए श्री जिनेंद्रदेवने कही हैं।।३७।।

भव्वजणबोहणत्थं, जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।
णाणं णाणसरूवं, अप्पाणं तं वियाणेहि।।३८।।

भव्य जीवोंको समझानेके लिए जिनमार्गमें जिनेंद्रदेवने जैसा कहा है वैसा ज्ञान तथा ज्ञानस्वरूप आत्माको हे भव्य! तू अच्छी तरह जान।।३८।।

जीवाजीवविभत्ती, जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी।
रायादिदोसरहिओ, जिणसासणमोक्खमग्गुत्ति।।३९।।

जो मनुष्य जीव और अजीवका विभाग जानता है -- शरीरादि अजीव तथा आत्माको जुदा-जुदा जानता है वह सम्यग्ज्ञानी है। जो रागद्वेषसे रहित है वह जिनशासनमें मोक्षमार्ग है ऐसा कहा गया है।।३९।।

दंसणणाणचरित्तं, तिण्णिवि जाणेह परमसद्धाए।
जं जाणिऊण जोई, अइरेण लहंति णिव्वाणं।।४०।।

दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनोंको तू अत्यंत श्रद्धासे जान। जिन्हें जानकर मुनिजन शीघ्रही निर्वाण प्राप्त करते हैं।।४०।।

पाऊण णाणसलिलं, णिम्मलसुविसुद्धभावसंजुत्ता।
हुंति सिवालयवासी, तिहुवणचूडामणी सिद्धा।।४१।।

जो पुरुष ज्ञानरूपी जलको पीकर निर्मल और अत्यंत विशुद्ध भावोंसे संयुक्त होते हैं वे शिवालयमें रहनेवाले तथा त्रिभुवनके चूडामणि सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।।४१।।

णाणगुणेहि विहीणा, ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं।
इय णाउं गुणदोसं, तं सण्णाणं वियाणेहि।।४२।।

जो मनुष्य ज्ञानगुणसे रहित हैं वे अपनी इष्ट वस्तुको नहीं पाते हैं इसलिए गुणदोषोंको जाननेके लिए सम्यग्ज्ञानको तू अच्छी तरह जान।।४२।।

चारित्तसमारूढो, अप्पासु परं ण ईहए णाणी।
पावइ अइरेण सुहं, अणोवमं जाण णिच्छयदो।।४३।।

जो मनुष्य चारित्रगुणसे युक्त तथा सम्यग्ज्ञानी है वह अपने आत्मामें परपदार्थकी इच्छा नहीं करता है ऐसा मनुष्य शीघ्र ही अनुपम सुख पाता है यह निश्चयसे जान।।४३।।

एवं संखेवेण य, भणियं णाणेण वीयरायेण।
सम्मत्तसंजमासय, दुण्हं पि उदेसियं चरणं।।४४।।

इस प्रकार वीतराग जिनेंद्रदेवने केवलज्ञानके द्वारा जिसका निरूपण किया था वह सम्यक्त्व तथा संयमके आश्रयरूप दोनों प्रकारका चारित्र मैंने संक्षेपसे कहा है।।४४।।

भावेह भावसुद्धं, फुडु रइयं चरणपाहुडं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं, अइरेणऽपुणब्भवा होई।।४५।।

हे भव्य जीवो! प्रकट रूपसे रचे हुए इस चारित्रपाहुड़का तुम शुद्ध भावोंसे चिंतन करो जिससे चतुर्गतिसे छूटकर शीघ्र ही पुनर्जन्मसे रहित हो जाओ -- जन्म-मरणकी व्यथासे छूटकर मुक्त हो जाओ।।४५।।

इस प्रकार चारित्रपाहुड़ पूर्ण हुआ।

*

बोधपाहुड

बहुसत्थअत्थजाणे, संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे।
वंदित्ता आयरिए, कसायमलवज्जिदे सुद्धे।।१।।
सयलजणबोहणत्थं, जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।
वुच्छामि समासेण, छक्कायसुहंकरं सुणह।।२।।

जो बहुत शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले हैं, जिनका तपश्चरण संयम और सम्यक्त्वसे शुद्ध है, जो कषायरूपी मलसे रहित हैं और जो अत्यंत शुद्ध हैं ऐसे आचार्योंकी वंदना कर मैं जिनमार्गमें श्री जिनदेवके द्वारा जैसा कहा गया है तथा जो छह कायके जीवोंको सुख उपजानेवाला है ऐसा बोधपाहुड ग्रंथ समस्त जीवोंको समझानेके लिए संक्षेपसे कहूँगा। हे भव्य! तू उसे सुन।।१-२।।

आयदणं चेदिहरं, जिणपडिमा दंसणं च जिणबिंबं।
भणियं सुवीयरायं, जिणमुद्दा णाणमदत्थं।।३।।
अरहंतेण सुदिट्ठं, जं देवं तित्थमिह य अरहंतं।
पावज्ज गुणविसुद्धा, इय णायव्वा जहाकमसो।।४।।

आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन, रागरहित जिनबिंब, जिनमुद्रा, आत्माके प्रयोजनभूत ज्ञान, देव, तीर्थ, अरहंत और गुणोंसे विशुद्ध दीक्षा ये ग्यारह स्थान जैसे अरहंत भगवान्‌ने कहे हैं वैसे यथाक्रमसे जाननेयोग्य हैं।।३-४।।

मय राय दोस मोहो, कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।
पंच महव्वयधारी, आयदणं महरिसी भणियं।।५।।

मद, राग, द्वेष, मोह, क्रोध और लोभ जिसके आधीन हो गये हैं और जो पाँच महाव्रतोंको धारण करता है ऐसा महामुनि आयतन कहा गया है।।५।।

सिद्धं जस्स सदत्थं, विसुद्धझाणस्स णाणजुत्तस्स।

सिद्धायदणं सिद्धं, मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं।।६।।

जो विशुद्ध ध्यान तथा केवलज्ञानसे युक्त है ऐसे जिस मुनिश्रेष्ठके शुद्ध आत्माकी सिद्धि हो गयी है उस समस्त पदार्थोंको जाननेवाले केवलज्ञानको सिद्धायतन कहा गया है।।६।।

बुद्धं जं बोहंतो, अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च।

पंचमहव्वयसुद्धं, णाणमयं जाण चेदिहरं।।७।।

जो आत्माको ज्ञानस्वरूप तथा दूसरे जीवोंको चैतन्यस्वरूप जानता है ऐसे पाँच महाव्रतोंसे शुद्ध और ज्ञानसे तन्मय मुनिको हे भव्य! तू चैत्यगृह जान।।७।।

चेइयबंधं मोक्खं, दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स।

चेइहरं जिणमग्गे, छक्कायहियंकरं भणियं।। ८।।

बंध मोक्ष दुःख ओर सुखका जिस आत्माको ज्ञान हो गया है वह चैत्य है, उसका घर चैत्यगृह कहलाता है तथा जिनमार्गमें छहकायके जीवोंका हित करनेवाला संयमी मुनि चैत्यगृह कहा गया है।।८।।

सपरा जंगमदेहा, दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।

णिग्गंथ वीयरागा, जिणमग्गे एरिसा पडिमा।।९।।

दर्शन ओर ज्ञानसे पवित्र चारित्रवाले निष्परिग्रह वीतराग मुनियोंका जो अपना तथा दूसरेका चलता फिरता शरीर है वह जिनमार्गमें प्रतिमा कहा गया है।।९।।

जं चरदि सुद्धचरणं, जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।

सा होइ वंदणीया, णिग्गंथा संजदा पडिमा।।१०।।

दंसण अणंत णाणं, अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य।

सासयसुक्ख अदेहा, मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं।।११।।

णिरुवममचलमखोहा, णिम्मिविया जंगमेण रूवेण।

सिद्धठाणम्मि ठिया, वोसरपडिमा धुवा सिद्धा।। १२।।

जो अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य और अनंतसुखसे सहित है, शाश्वत अविनाशी सुखसहित हैं, शरीररहित हैं, आठ कर्मोंके बंधनसे रहित हैं, उपमारहित हैं, चंचलतारहित हैं, क्षोभरहित हैं, जंगमरूपसे निर्मित हैं और लोकाग्रभागरूप सिद्धस्थानमें स्थित हैं ऐसे शरीररहित सिद्ध परमेष्ठी स्थावर प्रतिमा हैं।।११-१२।।

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।
णिग्गंथं णाणमयं, जिणमग्गे दंसणं भणियं।।१३।।

जो सम्यक्त्वरूप, संयमरूप, उत्तमधर्मरूप, निर्ग्रंथरूप एवं ज्ञानमय मोक्षमार्गको दिखलाता है ऐसे मुनिमार्गको दिखलाता है ऐसे मुनिके रूपको जिनमार्गमें दर्शन कहा है।।१३।।

जह फुल्लं गंधमयं, भवदि हु खीरं घियमयं चावि।
तह दंसणं हि सम्मं, णाणमयं होइ रूवत्थं।।१४।।

जिस प्रकार फूल गंधमय और दूध घृतमय होता है उसी प्रकार दर्शन अंतरंगमें सम्यग्ज्ञानमय है और बहिरंगमें मुनि, श्रावक और आर्यिकाके वेषरूप है।।१४।।

जिणबिंबं णाणमयं, संजमसुद्धं सुवीयरागं च।
जं देइ दिक्खसिक्खा, कम्मक्खयकारणे सुद्धा।।१५।।

जो ज्ञानमय है, संयमसे शुद्ध है, वीतराग है तथा कर्मक्षयमें कारणभूत शुद्ध दीक्षा और शिक्षा देता है ऐसा आचार्य जिनबिंब कहलाता है।।१५।।

तस्स य करह पणामं, सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।
जस्स च दंसण णाणं, अत्थि धुवं चेयणाभावो।।१६।।

जिसके नियमसे दर्शन, ज्ञान और चेतनाभाव विद्यमान है उस आचार्यरूप जिनबिंबको प्रणाम करो, सब प्रकारसे उसकी पूजा करो और शुद्ध प्रेम करो।।१६।।

तववयगुणेहिं सुद्धो, जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
अरहंतमुद्द एसा, दायारी दिक्खसिक्खा य।।१७।।

जो तप, व्रत और उत्तरगुणोंसे शुद्ध है, समस्त पदार्थोंको जानता देखता है तथा शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण करता है ऐसा आचार्य अर्हन्मुद्रा है, यही दीक्षा और शिक्षाको देनेवाली है।।१७।।

दढसंजममुद्दाए, इंदियमुद्दाकसायदढमुद्दा।
मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा एरिसा भणिया।।१८।।

दृढ़तासे संयम धारण करना सो संयम मुद्रा है, इंद्रियोंको विषयोंसे सन्मुख रखना सो इंद्रियमुद्रा है, कषायोंके वशीभूत न होना सो कषायमुद्रा है, ज्ञानके स्वरूपमें स्थिर होना सो ज्ञानमुद्रा है। जैन शास्त्रोंमें ऐसी जिनमुद्रा कही गयी है।।१८।।

संजमसंजुत्तस्स य, सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स।
णाणेण लहदि लक्खं, तम्हा णाणं च णायव्वं।।१९।।

संयमसहित तथा उत्तम ज्ञानयुक्त मोक्षमार्गका लक्ष्य जो शुद्ध आत्मा है वह ज्ञानसे ही प्राप्त किया

जाता है इसलिए ज्ञान जानने योग्य है।।१९।।

जइ णवि कहदि हु कक्खं, रहिओ कंडस्स वेज्झयविहीणो।
तह णवि लक्खदि लक्खं, अण्णाणी मोक्खमग्गस्स।।२०।।

जिस प्रकार धनुर्विद्याके अभ्याससे रहित पुरुष बाणके लक्ष्य अर्थात् निशानेको प्राप्त नहीं कर पाता उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष मोक्षमार्गके लक्ष्यभूत आत्माको नहीं ग्रहण कर पाता है।।२०।।

णाणं पुरिसस्स हवदि, लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स।।२१।।

ज्ञान पुरुष अर्थात् आत्मामें होता है और उसे विनयी मनुष्य ही प्राप्त कर पाता है। ज्ञान द्वारा यह जीव मोक्षमार्गका चिंतन करता हुआ लक्ष्यको प्राप्त करता है।।२१।।

मइधणुहं जस्स थिरं, सदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं।
परमत्थबद्धलक्खो, ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स।।२२।।

जिस मुनिके पास मतिज्ञानरूपी स्थिर धनुष्य है, श्रुतज्ञानरूपी डोरी है, रत्नत्रयरूपी बाण है और परमार्थरूप शुद्ध आत्मस्वरूपमें जिसने निशाना बाँध रखा है ऐसा मुनि मोक्षमार्गसे नहीं चूकता है।।२२।।

सो देवो जो अत्थं, धम्मं कामं सुदेइ णाणं च।
सो देइ जस्स अत्थि हु, अत्थो धम्मो य पव्वज्जा।।२३।।

देव वह है जो जीवोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका कारणभूत ज्ञान देता है। वास्तवमें देता भी वही है जिसके पास धर्म, अर्थ, काम तथा दीक्षा होती है।।२३।।

धम्मो दयाविसुद्धो, पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।
देवो ववगयमोहो, उदययरो भव्वजीवाणं।।२४।।

धर्म वह है जो दयासे विशुद्ध है, दीक्षा वह है जो सर्व परिग्रहसे रहित है और देव वह है जिसका मोह दूर हो गया हो तथा जो भव्य जीवोंका अभ्युदय करनेवाला हो।।२४।।

वयसम्मत्तविसुद्धे, पंचेंदियसंजदे णिरावेक्खे।
ण्हाऊण मुणी तित्थे, दिक्खासिक्खासुण्हाणेण।।२५।।

जो व्रत और सम्यक्त्वसे विशुद्ध है, पंचेंद्रियोंसे संयत है अर्थात् पाँचों इंद्रियोंको वश करनेवाला है और इस लोक तथा परलोकसंबंधी भोग-परिभोगसे निःस्पृह है ऐसे विशुद्ध आत्मारूपी तीर्थमें मुनिको दीक्षा-शिक्षारूपी उत्तम स्नानसे पवित्र होना चाहिए।।२५।।

जं णिम्मलं सुधम्मं, सम्मत्तं संजमं तवं णाणं।
तं तित्थं जिणमग्गे, हवेइ जदि संतभावेण।।२६।।

यदि शांतभावसे निर्मल धर्म, सम्यग्दर्शन, संयम, तप, और ज्ञान धारण किये जायें तो जिनमार्गमें यही तीर्थ कहा गया है।।२६।।

णामे ठवणे हि यं सं, दव्वे भावे हि सगुणपज्जाया।
चउणागदि संपदिमे, भावा भावंति अरहंतं।।२७।।

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इनके द्वारा गुण और पर्यायसहित अरहंत देव जाने जाते हैं। च्यवन[१], आगति[२], और संपत्ति[३] ये भाव अरहंतपनेका बोध कराते हैं।

दंसण अणंत णाणे, मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण।
णिरुवमगुणमारूढो, अरहंतो एरिसो होई।।२८।।

जिसके अनंत दर्शन और अनंत ज्ञान है, अष्टकर्मोंका बंध नष्ट होनेसे जिन्हें भावमोक्ष प्राप्त हो चुका है तथा जो अनुपम गुणोंको धारण करता है ऐसा शुद्ध आत्मा अरहंत होता है।।२८।।

जरवाहिजम्ममरणं, चउगइगमणं च पुण्णपावं च।
हंतूण दोसकम्मे, हुउ णाणमये च अरहंतो।।२९।।

जो बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, चतुर्गतियोंमें गमन, पुण्य और पाप तथा रागादि दोषोंको नष्ट कर ज्ञानमय होता है वह अरहंत कहलाता है।।२९।।

गुणठाणमग्गणेहिं य, पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं।
ठावण पंचविहेहिं, पणयव्वा अरहपुरिसस्स।।३०।।

गुणस्थान, मार्गणा, पर्याप्ति, प्राण और जीवसमास इस तरह पाँच प्रकारसे अर्हंत पुरुषकी स्थापना करना चाहिए। ।।३०।।

तेरहमे गुणठाणे, सजोइकेवलिय होइ अरहंतो।
चउतीस अइसयगुणा, होंति हु तस्सट्ठ पडिहारा।।३१।।

तेरहवें गुणस्थानमें सयोगकेवली अरहंत होते हैं। उनके स्पष्ट रूपसे चौंतीस अतिशयरूप गुण तथा आठ प्रातिहार्य होते हैं।।३१।।

गइइंदिये च काए, जोए वेदे कसायणाणे य।
संजमदंसणलेस्सा, भविया सम्मत्त सण्णि आहारे।।३२।।

गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार इन चौदह मार्गणाओंमें अरहंतकी स्थापना करनी चाहिए।।३२।।

---

१. स्वर्गादिसे अवतार लेना। २. भरतादि क्षेत्रोंमें आकर जन्म धारण करना ३. संपत् रत्नवृष्टि आदि।

आहारो य सरीरो, इंदियमण आणपाणभासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो, उत्तमदेवो हवइ अरहो।।३३।।

आहार, शरीर, इंद्रिय, मन, श्वासोच्छ्वास और भाषा इन पर्याप्तिरूप गुणोंसे समृद्ध उत्तम देव अर्हंत होता है।।३३।।

पंचवि इंदियपाणा, मणवयकाएण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा, आउगपाणेण होंति तह दह पाणा।।३४।।

पाँचों इंद्रियाँ, मन वचन कायकी अपेक्षा तीन बल तथा आयु प्राणसे सहित श्वासोच्छ्वास ये दश प्राण होते हैं।।३४।।

मणुयभवे पंचिंदिय, जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे।
एहे गुणगणजुत्तो, गुणमारूढो हवइ अरहो।।३५।।

मनुष्यपर्यायमें पंचेंद्रिय नामका जो चौदहवाँ जीवसमास है उसमें इन गुणोंके समूहसे युक्त, तेरहवें गुणस्थानपर आरूढ मनुष्य अर्हंत होता है।।३५।।

जरवाहिदुक्खरहियं, आहारणिहारवज्जियं विमलं।
सिंहाण खेल सेओ, णत्थि दुगुंछा य दोसो य।।३६।।
दस पाणा पज्जत्ती, अट्ठसहस्सा य लक्खणा भणिया।
गोखीरसंखधवलं, मंसं रुहिरं च सव्वंगे।।३७।।
एरिसगुणेहिं सव्वं, अइसयवंतं सुपरिमलामोयं।
ओरालियं च कायं, णायव्वं अरिहपुरिसस्स।।३८।।

जो बुढ़ापा, रोग आदिके दुःखोंसे रहित हैं, आहार नीहारसे वर्जित हैं, निर्मल हैं और जिसमें नाकका मल (श्लेष्म), थूक, पसीना, दुर्गंध आदि दोष नहीं हैं।।३६।।

जिनके १० प्राण, ६ पर्याप्तियाँ और १००८ लक्षण कहे गये हैं वे तथा जिनके सर्वांगमें गोदुग्ध और शंखके समान सफेद मांस और रुधिर है।।३७।।

इस प्रकारके गुणोंसे सहित तथा समस्त अतिशयोंसे युक्त अत्यंत सुगंधित औदारिक शरीर अर्हंत पुरुषके जानना चाहिए। यह द्रव्य अर्हंतका वर्णन है।।३८।।

मयरायदोसरहिओ, कसायमलवज्जिओ य सुविसुद्धो।
चित्तपरिणामरहिदो, केवलभावे मुणेयव्वो।।३९।।

केवलज्ञानरूप भावके होनेपर अर्हंत मद राग द्वेषसे रहित, कषायरूप मलसे वर्जित, अत्यंत शुद्ध

और मनके परिणामसे रहित होता है ऐसा जानना चाहिए।।३९।।

सम्मद्दंसणि पस्सइ, जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।

सम्मत्तगुणविसुद्धो, भावो अरहस्स णायव्वो।।४०।।

अरहंत परमेष्ठी अपने समीचीन दर्शनगुणके द्वारा समस्त द्रव्यपर्यायोंको सामान्य रूपसे देखते हैं और ज्ञानगुणके द्वारा विशेष रूपसे जानते हैं। वे सम्यग्दर्शनरूप गुणसे अत्यंत निर्मल रहते हैं। इस प्रकार अरहंतका भाव जानना चाहिए।

सुण्णहरे तरुहिट्ठे, उज्जाणे तह मसाणवासे वा।

गिरिगुह गिरिसिहरे वा, भीमवणे अहव वसिदो वा।।४१।।

सवसासत्त तित्थं, वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।

जिणभवणं अह वेज्झं, जिणमग्गे जिणवरा विंति।।४२।।

पंचमहव्वयजुत्ता, पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।

सज्झायझाणजुत्ता, मुणिवरवसहा णिइच्छंति।।४३।।

शून्यगृहमें, वृक्षके अधस्तलमें, उद्यानमें, श्मशानमें, पहाड़की गुफामें, पहाड़के शिखरपर, भयंकर वनमें अथवा वसतिकामें मुनिराज रहते हैं।

स्वाधीन मुनियोंके निवासरूप तीर्थ, उनके नामके अक्षररूप वचन, उनकी प्रतिमारूप चैत्य, प्रतिमाओंकी स्थापनाका आधाररूप आलय और कहे हुए आयतनादिके साथ जिनभवन -- अकृत्रिम जिनचैत्यालय आदिको जिनमार्गमें जिनेंद्रदेव मुनियोंके लिए वेद्य अर्थात् जाननेयोग्य पदार्थ कहते हैं। पाँच महाव्रतोंसे सहित, पाँच इंद्रियोंको जीतनेवाले, निःस्पृह तथा स्वाध्याय और ध्यानसे युक्त श्रेष्ठ मुनि उपर्युक्त स्थानोंको निश्चयमें चाहते हैं।।४१-४३।।

गिहगंथमोहमुक्का, बावीसपरीसहा जियकसाया।

पावारंभविमुक्का, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४४।।

जो गृहनिवास तथा परिग्रहके मोहसे रहित है, जिसमें बाईस परिषह सहे जाते हैं, कषाय जीती जाती है और पापके आरंभसे रहित है ऐसी दीक्षा जिनेंद्रदेवने कही है।।४४।।

धणधण्णवत्थदाणं, हिरण्णसयणासणाइ छत्ताइं।

कुद्दाणविरहरहिया, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४५।।

जो धन धान्य वस्त्रादिके दान, सोना चांदी, शय्या, आसन तथा छत्र आदिके खोटे दानसे रहित है ऐसी दीक्षा कही गयी है।।४५।।

सत्तूमित्ते य समा, पसंसणिद्दा अलद्धिलद्धि समा।

तणकणए समभावा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४६।।

जो शत्रु और मित्र, प्रशंसा और निंदा, हानि और लाभ, तथा तृण और सुवर्णमें समान भाव रखती है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।।४६।।

उत्तममज्झिमगेहे, दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा।

सव्वत्थगिहिदपिंडा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४७।।

जहाँ उत्तम और मध्यम घरमें, दरिद्र तथा धनवानमें, कोई भेद नहीं रहता तथा सब जगह आहार ग्रहण किया जाता है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।।४७।।

णिग्गंथा णिस्संगा, णिम्माणासा अराय णिद्दोसा।

णिम्मम णिरहंकारा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४८।।

जो परिग्रहरहित है, स्त्री आदि परपदार्थके संसर्गसे रहित है, मानकषाय और भोग-परिभोगकी आशासे रहित है, दोषसे रहित है, ममतारहित है और अहंकारसे रहित है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।।

णिण्णेहा णिल्लोहा, णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा।

णिब्भव णिरासभावा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।४९।।

जो स्नेहरहित है, लोभरहित है, मोहरहित है, विकाररहित है, कलुषतारहित है, भयरहित है और आशारहित है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।।४९।।

जह जायरूवसरिसा, अवलंबियभुय णिराउहा संता।

परकियणिलयणिवासा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५०।।

जिसमें सद्योजात बालकके समान नग्न रूप धारण किया जाता है, भुजाएँ नीचेकी ओर लटकायी जाती हैं, जो शस्त्ररहित है, शांत है और जिसमें दूसरेके द्वारा बनायी हुई वसतिकामें निवास किया जाता है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।।५०।।

उवसमखमदमजुत्ता, सरीरसंक्कारवज्जिया रूक्खा।

मयरायदोसरहिया, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५१।।

जो उपशम, क्षमा तथा दमसे युक्त है, शरीरके संस्कारसे वर्जित है, रूक्ष है, मद राग एवं द्वेषसे रहित है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।।५१।।

विवरीयमूढभावा, पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता।

सम्मत्तगुणविसुद्धा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५२।।

जिसका मूढभाव दूर हो गया है, जिसमें आठों कर्म नष्ट हो गये हैं, मिथ्यात्वभाव नष्ट हो गया है और जो सम्यग्दर्शनरूप गुणसे विशुद्ध है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।।५२।।

जिणमग्गे पव्वज्जा, छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।

भावंति भव्वपुरिसा, कम्मक्खयकारणे भणिया।।५३।।

जिनमार्गमें जिनदीक्षा छहों संहननोंवालोंके लिए कही गयी है। यह दीक्षा कर्मक्षयका कारण बतायी गयी है। ऐसी दीक्षाकी भव्य पुरुष निरंतर भावना करते हैं।।५३।।

तिलतुसमत्तणिमित्तं, समबाहिरगंथसंगहो णत्थि।

पव्वज्ज हवइ एसा, जह भणिया सव्वदरसीहिं।।५४।।

जिसमें तिलतुषमात्र बाह्य परिग्रहका संग्रह नहीं है ऐसी जिनदीक्षा सर्वज्ञदेवके द्वारा कही गयी है।।५४।।

उवसग्गपरिसहसहा, णिज्जणदेसे हि णिच्च अत्थेहि।

सिलकट्ठे भूमितले, सव्वे आरुहइ सव्वत्थ।।५५।।

उपसर्ग और परिषहोंको सहन करनेवाले मुनि निरंतर निर्जन स्थानमें रहते हैं, वहाँ भी सर्वत्र शिला, काष्ठ वा भूमितलपर बैठते हैं।।५५।।

पसुमहिलसंढसंगं, कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।

सज्झायझाणजुत्ता, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५६।।

जिसमें पशु स्त्री नपुंसक और कुशील मनुष्योंका संग नहीं किया जाता, विकथाएँ नहीं कही जातीं और सदा स्वाध्याय तथा ध्यानमें लीन रहा जाता है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।।५६।।

तववयगुणेहिं सुद्धा, संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य।

सुद्धा गुणेहिं सुद्धा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।।५७।।

जो तप व्रत और उत्तर गुणोंसे शुद्ध है, संयम, सम्यक्त्व और मूलगुणोंसे विशुद्ध है तथा दीक्षोचित अन्य गुणोंसे शुद्ध है ऐसी जिनदीक्षा कही गयी है।।५७।।

एवं आयत्तणगुणपज्जत्ता बहुविहसम्मत्ते।

णिग्गंथे जिणमग्गे, संखेवेणं जहाखादं।।५८।।

इस प्रकार आत्मगुणोंसे परिपूर्ण जिनदीक्षा अत्यंत निर्मल सम्यक्त्वसहित, निष्परिग्रह जिनमार्गमें जैसी कही गयी है वैसी संक्षेपसे मैंने कही है।।५८।।

रूवत्थं सुद्धत्थं, जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।

भव्वजणबोहणत्थं, छक्कायहिदंकरं उत्तं।।५९।।

जिनेंद्रदेवने जिनमार्गमें शुद्धिके लिए जिस रूपस्थ मार्गका निरूपण किया है, छह कायके जीवोंका हित करनेवाला वह मार्ग भव्य जीवोंको समझानेके लिए मैंने कहा है।।

सद्दवियारो हूओ, भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं, सीसेण य भद्दबाहुस्स।।६०।।

शब्दविकारसे उत्पन्न हुए भाषासूत्रोंमें श्री जिनेंद्रदेवने जो कहा है तथा भद्रबाहुके शिष्यने जिसे जाना है वही मार्ग मैंने कहा है।।६०।।

बारसअंगवियाणं, चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणिभद्दबाहू, गमयगुरू भयवओ जयओ।।६१।।

द्वादशांगके जाननेवाले, चौदह पूर्वोंका बृहद् विस्तार करनेवाले और व्याख्याकारोंमें प्रधान श्रुतकेवली भगवान् भद्रबाहु जयवंत होवें।।

इस प्रकार बोधपाहुड समाप्त हुआ।

*

भावपाहुड

णमिऊण जिणवरिंदे, णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे।
वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा।।१।।

चक्रवर्ती, इंद्र तथा धरणेंद्रसे वंदित अर्हंतोंको, सिद्धोंको तथा अवशिष्ट आचार्य, उपाध्याय और साधुरूप संयतोंको शिरसे नमस्कार कर मैं भावपाहुड ग्रंथको कहूँगा।।१।।

भावो हि पढमलिंगं, च ण दव्वलिंगं जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं जिणा विंति।।२।।

निश्चयसे भाव जिनदीक्षाका प्रथम लिंग है, द्रव्यलिंगको तू परमार्थ मत जान, भाव ही गुणदोषोंका कारण है ऐसा जिनदेव कहते हैं।।२।।

भावविसुद्धिणिमित्तं, बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो, अब्भंतरगंथजुत्तस्स।।३।।

भावशुद्धिके कारण ही बाह्यपरिग्रहका त्याग किया जाता है। जो आभ्यंतर परिग्रहसे युक्त है उसका बाह्य परिग्रहका त्याग निष्फल है।।३।।

भावरहिओ ण सिज्झइ, जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।

जम्मंतराइ बहुसो, लंबियहत्थो गलियवथो।।४।।

भावरहित जीव यदि करोडों जन्मतक अनेक बार हाथ लटका कर तथा वस्त्रोंका त्याग कर तपश्चरण करे तो भी सिद्ध नहीं होता।।४।।

परिणामम्मि असुद्धे, गंथे मुंचेइ बाहिरे य जई ।

बाहिरगंथच्चाओ, भावविहूणस्स किं कुणइ।।५।।

यदि कोई यति भाव अशुद्ध रहते हुए बाह्य परिग्रहका त्याग करता है तो भावहीन यतिका वह बाह्य परिग्रहत्याग क्या कर सकता है? कुछ नहीं।।५।।

जाणहि भावं पढमं, किं ते लिंगेण भावरहिएण।

पंथिय शिवपुरिपंथं, जिणउवइट्ठं पयत्तेण।।६।।

हे पथिक! तू सर्वप्रथम भावको ही जान। भावरहित वेषसे तुझे क्या प्रयोजन? भाव ही जिनेंद्रदेवके द्वारा प्रयत्नपूर्वक शिवपुरीका मार्ग बतलाया गया है।।६।।

भावरहिएण सपुरिस, अणाइकालं अणंतसंसारे।

गहिउज्झियाइं बहुसो, बाहिरणिग्गंथरूवाइं।।७।।

हे सत्पुरुष! भावरहित तूने अनादिकालसे इस अनंत संसारमें बाह्य निर्ग्रंथ रूप -- द्रव्यलिंग अनेक बार ग्रहण किये हैं और छोड़े हैं।।७।।

भीसणणरयगईए, तिरियगईए कुदेवमणुगईए।

पत्तोसि तिव्वदुक्खं, भावहि जिणभावणा जीव।।८।।

हे जीव! तूने भयंकर नरकगतिमें, तिर्यंचगतिमें, नीच देव और नीच मनुष्यगतिमें तीव्र दुःख प्राप्त किये हैं, अतः तू जिनेंद्रप्रणीत भावनाका चिंतवन कर।।८।।

सत्तसु णरयावासे, दारुणभीसाइं असहणीयाइं।

भुत्ताइं सुइरकालं, दुक्खाइं णिरंतरं सहियाइं।।९।।

हे जीव! तूने सात नरकावासोंमें बहुत कालतक अत्यंत भयानक और न सहनेयोग्य दुःख निरंतर भोगे तथा सहे हैं।।९।।

खणणुत्तालनवालणवेयणविच्छेयणाणिरोहं च।

पत्तोसि भावरहिओ, तिरियगईए चिरं कालं।।१०।।

हे जीव! भावरहित तूने तिर्यंचगतिमें चिरकालतक खोदा जाना, तपाया जाना, जलाया जाना,

हवा किया जाना, तोड़ा जाना और रोका जाना आदिके दुःख प्राप्त किये हैं।।१०।।

आगंतुअमाणसियं, सहजं सारीरियं च चत्तारि।
दुक्खाइं मणुयजम्मे, पत्तोसि अणंतयं कालं।।११।।

हे जीव! तूने मनुष्यगतिमें आगंतुक, मानसिक, साहजिक और शारीरिक ये चार प्रकारके दुःख अनंतकाल तक प्राप्त किये हैं।।११।।

सुरणिलयेसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं णिच्चं।
संपत्तोसि महाजस, दुक्खं सुहभावणारहिओ।।१२।।

हे महायशके धारक! तूने शुभ भावनासे रहित होकर स्वर्ग लोकमें देव-देवियोंका वियोग होनेपर तीव्र मानसिक दुःख प्राप्त किया है।।१२।।

कंदप्पमाइयाओ, पंचवि असुहादिभावणाई य।
भाऊण दव्वलिंगी, पहीणदेवो दिवे जाओ।।१३।।

हे जीव! तू द्रव्यलिंगी होकर कांदर्पी[1] आदि पाँच अशुभ भावनाओंका चिंतवन कर स्वर्गमें नीच देव हुआ

पासत्थभावणाओ, अणाइकालं अणेयवाराओ।
भाऊण दुहं पत्तो, कुभावणाभावबीएहिं।।१४।।

हे जीव! तूने अनादि कालसे अनेक बार पार्श्वस्थ कुशील, संसक्त, अवसन्न और मृगचारी आदि भावनाओंका चिंतवन कर खोटी भावनाओंके भावरूप बीजोंसे दुःख प्राप्त किये हैं।।१४।।

देवाण गुण विहूई, इड्ढी माहप्प बहुविहं दट्ठुं।
होऊण हीणदेवो, पत्तो बहुमाणसं दुक्खं।।१५।।

हे जीव! तूने नीच देव होकर अन्य देवोंके गुण विभूति ऋद्धि तथा बहुत प्रकारका माहात्म्य देखकर बहुत भारी मानसिक दुःख प्राप्त किया है।।१५।।

चउविह विकहासत्तो, मयमत्तो असुहभावपयडत्थो।
होऊण कुदेवत्तं, पत्तोसि अणेयवाराओ।।१६।।

हे जीव! तू चार प्रकारकी विकथाओंमें आसक्त होकर, आठ मदोंसे मत्त होकर और अशुभ भावोंसे स्पष्ट प्रयोजन धारण कर अनेक बार कुदेव पर्याय -- भवनत्रिकमें उत्पन्न हुआ है।।१६।।

---

१. १. कांदर्पी, २. किल्विषिकी, ३. संमोही, ४. दानवी, ५. आभियोगिकी ये ५ अशुभ भावनाएँ हैं।

असुहीवीहत्थेहि य, कलिमलबहुला हि गब्भवसहीहि।
वसिओसि चिरं कालं, अणेयजणणीण मुणिपवर।।१७।।

हे मुनिप्रवर! तूने अनेक माताओंके अशुद्ध, घृणित और पापरूप मलसे मलिन गर्भवसतियोंमें चिरकालतक निवास किया है।।१७।।

पीओसि थणच्छीरं, अणंतजम्मंतराइं जणणीणं।
अण्णण्णाण महाजस, सायरसलिला दु अहिययरं।।१८।।

हे महायशके धारक! तूने अनंत जन्मोंमें अन्य अन्य माताओंके स्तनका इतना अधिक दूध पिया है कि वह इकट्ठा किया जानेपर समुद्रके जलसे भी अधिक होगा।।१८।।

तुह मरणे दुक्खेण, अण्णण्णाणं अणेयजणणीणं।
रुण्णाण णयणणीरं, सायरसलिला दु अहिययरं।।१९।।

हे जीव! तुम्हारे मरनेपर दुःखसे रोनेवाली भिन्न भिन्न अनेक माताओंके आँसू समुद्रके जलसे भी अधिक होंगे।।१९।।

भवसायरे अणंते, छिण्णुज्झियकेसणहरणालट्ठी।
पुंजइ जइ कोवि जए, हवदि य गिरिसमधिया रासी।।२०।।

हे जीव! इस अनंत संसारसागरमें तुम्हारे कटे और छोड़े हुए केश, नख, बाल और हड्डीको यदि कोई देव इकट्ठा करे तो उसकी राशि मेरुपर्वतसे भी ऊँची हो जाय।।२०।।

जलथलसिहिपवणंवरगिरिसरिदरितरुवणाइं सव्वत्तो।
वसिओ सि चिरं कालं, तिहुवणमज्झे अणप्पवसो।।२१।।

हे जीव! तूने पराधीन होकर तीन लोकके बीच जल, स्थल, अग्नि, वायु, आकाश, पर्वत, नदी, गुफा, वृक्ष, वन आदि सभी स्थानोंमें चिरकालतक निवास किया है।।२१।।

गसियाइं पुग्गलाइं, भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइं।
पत्तोसि तो ण तित्तिं, पुणरूवं ताइं भुंजंतो।।२२।।

हे जीव! तूने लोकके मध्यमें स्थित समस्त पुद्गलोंका भक्षण किया तथा उन्हें बार-बार भोगते हुए भी तृप्ति नहीं हुई।।२२।।

तिहुयणसलिलं सयलं, पीयं तिण्हाये पीडिएण तुमे।
तो वि ण तिण्हाच्छेओ, जाओ चिंतेह भवमहणं।।२३।।

हे जीव! तूने प्याससे पीड़ित होकर तीन लोकका समस्त जल पी लिया तो भी तेरी प्यासका अंत

नहीं हुआ। इसलिए तू संसारका नाश करनेवाले रत्नत्रयका चिंतन कर।।२३।।

गहि उज्झियाइं मुणिवर, कलेवराइं तुमे अणेयाइं।
ताणं णत्थि पमाणं, अणंतभवसायरे धीर।।२४।।

हे मुनिवर! हे धीर! इस अनंत संसारमें तूने जो अनेक शरीर ग्रहण किये तथा छोड़े हैं उनका प्रमाण नहीं है।।२४।।

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं।
आहारुस्सासाणं, णिरोहणा खिज्जए आऊ।।२५।।
हिमजलणसलिलगुरूयरपव्वयतुरुहणषडणभंगेहिं।
रसविज्जजोयधारण, अणयपसंगेहि विविहेहिं।।२६।।
इय तिरियमणुयजम्मे, सुइरं उववज्जिऊण बहुवारं।
अवमिच्चुमहादुक्खं, तिव्वं पत्तोसि तं मित्त।।२७।।

विष, वेदना, रक्तक्षय, भय, शस्त्रग्रहण, संक्लेश, आहारनिरोध, श्वासोच्छ्वासनिरोध, बर्फ, अग्नि, पानी, बड़े पर्वत अथवा वृक्षपर चढ़ते समय गिरना, शरीरका भंग, रसविद्याके प्रयोगसे और अन्यायके विविध प्रयोगसे आयुका क्षय होता है। हे मित्र! इस प्रकार तिर्यंच और मनुष्य गतिमें उत्पन्न होकर चिरकालसे अनेक बार अकालमृत्युका अत्यंत तीव्र महादुःख तूने प्राप्त किया है।।२५-२७।।

छत्तीसं तिण्णिसया, छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि।
अंतोमुहुत्तमज्झे, पत्तोसि णिगोयवासम्मि।।२८।।

हे जीव! तूने निगोदावासमें अंतर्मुहूर्तके भीतर छ्यासठ हजार तीनसौ छत्तीस बार मरण प्राप्त किया है।।२८।।

वियलिंदिए असीदी, सट्ठी चालीसमेव जाणेह।
पंचिंदियचउवीसं, खुद्दभवंतो मुहुत्तस्स।।२९।।

हे जीव! ऊपर जो अंतर्मुहुर्तके क्षुद्रभव बतलाये हैं उनमें द्वींद्रियोंके ८०, त्रींद्रियोंके ६०, चतुरिंद्रियोंके ४० और पंचेंद्रियोंके २४ भव होते हैं ऐसा तू जान।।२९।।

रयणत्तये अलद्धे, एवं भमिओसि दीहसंसारे।
इय जिणवरेहिं भणिओ, तं रयणत्तय समायरह।।३०।।

हे जीव! इस प्रकार रत्नत्रय प्राप्त न होनेसे तूने इस दीर्घ संसारमें भ्रमण किया है इसलिए तू रत्नत्रयका आचरण कर ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है।।३०।।

अप्पा अप्पम्मि रओ, सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं, चरदिह चारित्तमग्गुत्ति।।३१।।

आत्मा आत्मामें लीन होता है यह सम्यग्दर्शन है, जीव उस आत्माको जानता है यह सम्यग्ज्ञान है तथा उसी आत्मामें चरण रखता है यह चारित्र है।।३१।।

अण्णे कुमरणमरणं, अणेयजम्मंतराइं मरिओसि।
भावहि सुमरणमरणं, जरमरणविणासणं जीव।।३२।।

हे जीव! तू अन्य अनेक जन्मोंमें कुमरणमरणसे मृत्युको प्राप्त हुआ है अतः अब जरामरणका विनाश करनेवाले सुमरण मरणका चिंतन कर।।३२।।

सो णत्थि दव्वसवणो, परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।
जत्थ ण जाओ ण मओ, तियलोयपमाणिओ सव्वो।।३३।।

तीन लोक प्रमाण इस समस्त लोकाकाशमें ऐसा परमाणु मात्र भी स्थान नहीं है जहाँ कि द्रव्यलिंगी मुनि न उत्पन्न हुआ हो और न मरा हो।।३३।।

कालमणंतं जीवो, जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं।
जिणलिंगेण वि पत्तो, परंपराभावरहिएण।।३४।।

आचार्य परंपरासे उपदिष्ट भावलिंगसे रहित द्रव्यलिंग द्वारा भी इस जीवने अनंतकाल तक जन्म जरा मरणसे पीड़ित हो दुःख ही प्राप्त किया है।।३४।।

पडिदेससमयपुग्गलआउगपरिणामणामकालट्ठं।
गहिउज्झियाइं बहुसो, अणंतभवसायरे जीवो।।३५।।

अनंत संसारसागरके बीच इस जीवने प्रत्येक देश, प्रत्येक समय, प्रत्येक पुद्गल, प्रत्येक आयु, प्रत्येक रागादि भाव, प्रत्येक नामादि कर्म तथा उत्सर्पिणी आदि कालमें स्थित अनंत शरीरोंको अनेक बार ग्रहण किया और छोड़ा।।३५।।

तेयाला तिण्णिसया, रज्जूणं लोयखेत्तपरिमाणं।
मुत्तूणट्ठपएसा, जत्थ ण ढुरुढुल्लियो जीवो।।३६।।

३४३ राजूप्रमाण लोक क्षेत्रमें आठ मध्यप्रदेशोंको छोड़कर ऐसा कोई प्रदेश नहीं जहाँ इस जीवने भ्रमण न किया हो।।३६।।

एक्केकंगुलिवाही, छण्णवदी होंति जाणमणुयाणं।
अक्सेसे य सरीरे, रोया भण कित्तिया भणिया।।३७।।

मनुष्य शरीरके एक-एक अंगुल प्रदेशमें जब छियानवे छियानवे रोग होते हैं तब शेष समस्त शरीरमें कितने-कितने रोग कहे जा सकते हैं, हे जीव! यह तू जान।।३७।।

ते रोया विय सयला, सहिया ते परवसेण पुव्वभवे।
एवं सहसि महाजस, किंवा बहुएहिं लविएहिं।।३८।।

हे महायशके धारक जीव! तूने वे सब दुःख पूर्वभवमें परवश होकर सहे हैं और अब इस प्रकार सह रहा है, अधिक कहनेसे क्या?।।३८।।

पित्तंतमुत्तफेफसकालिज्जियरुहिरखरिस किमिजाले।
उयरे वसिओसि चिरं, नवदसमासेहिं पत्तेहिं।।३९।।

हे जीव! तूने पित्त, आंत, मूत्र, फुप्फुस, जिगर, रुधिर, खरिस[1] और कीडोंके समूहसे भरे हुए माताके उदरमें अनंत वार नौ-नौ दस-दस मास तक निवास किया है।।३९।।

दियसंगट्ठियमसणं, आहारिय मायभुत्तमण्णांते।
छद्दिखरिसाणमध्ये जठरे वसिओसि जणणीए।।४०।।

हे जीव! तूने माताके पेटमें दाँतोंके संगमें स्थित तथा माताके खानेके बाद उसके खाये हुए अन्नको खाकर वमन और खरिसके[1] बीच निवास किया है।

सिसुकाले य अमाणे असुईमज्झम्मि लोलिओसि तुमं।
असुई असिआ बहुसो, मुणिवर बालत्तपत्तेण।।४१।।

हे मुनिश्रेष्ठ! तू अज्ञानपूर्ण बाल्य अवस्थामें अपवित्र स्थानमें लौटा है तथा बालकपनके कारण अनेक बार तू अपवित्र वस्तुओंको खा चुका है।।४१।।

मंसट्ठिसुक्कसोणियपित्तंतसक्तकुणिमदुग्गंधं।
खरिसवसपूयखिब्भिसभरियं चिंतेहि देहउडं।।४२।।

हे जीव! तू इस शरीररूपी घड़ेका चिंतन कर जो मांस, हड्डी, वीर्य, रुधिर, पित्त, आंतसे झरती हुई मुर्देके समान दुर्गंधसे सहित है तथा खरिस, चर्बी, पीप आदि अपवित्र वस्तुओंसे भरा हुआ है।।४२।।

भावविमुत्तो मुत्तो, णय मुत्तो बंधवाइमित्तेण।
इय भाविऊण उज्झसु, गंथं अब्भंतरं धीर।।४३।।

जो रागादिभावोंसे मुक्त है वास्तवमें वही मुक्त है। जो केवल बांधव आदिसे मुक्त है वह मुक्त नहीं है। ऐसा विचार कर हे धीर वीर! तू अंतरंग परिग्रहका त्याग कर।।४३।।

देहादिचत्तसंगो, माणकसाएण कलुसिओ धीर।
अत्तावणेण आदो, बाहुबली कित्तियं कालं।।४४।।

हे धीर मुनि! देहादिके संबंधसे रहित किंतु मान कषायसे कलुषित बाहुबली स्वामी कितने समय तक आतापन योगसे स्थित रहे थे?।

१. बिना पके हुए रुधिरसे मिले हुए कफको खरिस कहते हैं।

भावार्थ -- यद्यपि बाहुबली स्वामी शरीरादिसे विरक्त होकर आतापनसे विराजमान थे परंतु 'मैं भरतकी भूमिमें खड़ा हूँ' इस प्रकार सूक्ष्म मान विद्यमान रहनेसे केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सके थे। जब उनके हृदयसे उक्त प्रकारका मान दूर हो गया था तभी उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। इससे यह सिद्ध होता है कि अंतरंगकी उज्ज्वलताके बिना केवल बाह्य त्यागसे कुछ नहीं होता।।४४।।

महुपिंगो णाय मुणी देहा हारादिचत्तवावारो।
सवणत्तणं ण पत्तो, णियाणमित्तेण भवियणुव।।४५।।

हे भव्य जीवोंके द्वारा नमस्कृत मुनि! शरीर तथा आहारका त्याग करनेवाले मधुपिंग नामक मुनि निदानमात्रसे श्रमणपनेको प्राप्त नहीं हुए थे।।४५।।

अण्णं च वसिट्ठमुणी, पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।
सो णत्थि वासठाणो, जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो।।४६।।

और भी एक वशिष्ठ मुनि निदानमात्रसे दुःखको प्राप्त हुए थे। लोकमें वह निवासस्थान नहीं है जहाँ इस जीवने भ्रमण न किया हो।।४६।।

सो णत्थि तं पएसो, चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।
भावविरओ वि सवणो, जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो।।४७।।

हे जीव! चौरासी लाख योनिके निवासमें वह एक भी प्रदेश नहीं है जहाँ अन्यकी बात जाने दो, भावरहित साधुने भ्रमण न किया हो।।४७।।

भावेण होइ लिंगी, ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भावं, किं कीरइ दव्वलिंगेण।।४८।।

मुनि भावसे ही जिनलिंगी होता है, द्रव्यमात्रसे जिनलिंगी नहीं होता। इसलिए भावलिंग ही धारण करो, द्रव्यलिंगसे क्या काम सिद्ध होता है?।।४८।।

दंडअणयरं सयलं, डहिओ अब्भंतरेण दोसेण ।
जिणलिंगेण वि बाहू, पडिओ सो रउरवे णरये।।४९।।

बाहु मुनि जिनलिंगसे सहित होनेपर भी अंतरंगके दोषसे दंडक नामक समस्त नगरको जलाकर रौरव नामक नरकमें उत्पन्न हुआ था।।४९।।

अवरो वि दव्वसवणो, दंसणवरणाणचरणपब्भट्टो।
दीवायणुत्ति णामो, अणंतसंसारिओ जाओ।।५०।।

और भी एक द्वैपायन नामक द्रव्यलिंगी श्रमण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रसे भ्रष्ट

होकर अनंतसंसारी हुआ।।५०।।

भावसमणो य धीरो, जुवईजणवेढ्ढिओ विसुद्धमई।
णामेण सिवकुमारो, परीत्तसंसारिओ जादो।।५१।।

भावलिंगका धारक धीर वीर शिवकुमार नामका मुनि युवतिजनोंसे परिवृत होकर भी विशुद्धहृदय बना रहा और इसीलिए संसारसमुद्रसे पार हुआ।।५१।।

अंगाइं दस य दुण्णि य, चउदसपुव्वाइं सयलसुयणाणं।
पढिओ अ भव्वसेणो, ण भावसवणत्तणं पत्तो।।५२।।

भव्यसेन नामक मुनिने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप समस्त श्रुतज्ञानको पढ़ लिया तो भी वह भावश्रवणपनेको प्राप्त नहीं हुआ।।५२।।

तुसमासं घोसंतो, भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई, केवलणाणी फुडं जाओ।।५३।।

यह बात सर्वप्रसिद्ध है कि विशुद्ध भावोंके धारक और अत्यंत प्रभावसे युक्त शिवभूति मुनि 'तुषमाष' पदको घोकते हुए -- याद करते हुए केवलज्ञानी हो गये।।५३।।

भावेण होइ णग्गो, बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।
कम्मपयडीयणियरं, णासइ भावेण दव्वेण।।५४।।

भावसे ही निर्ग्रंथ रूप सार्थक होता है, केवल बाह्यलिंगरूप नग्न मुद्रासे क्या प्रयोजन है? कर्मप्रकृतियोंका समुदाय भावसहित द्रव्यलिंगसे ही नष्ट होता है।।५४।।

णग्गत्तणं अकज्जं, भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं।
इय णाऊण य णिच्चं, भाविज्जहि अप्पयं धीर।।५५।।

जिनेंद्र भगवान्ने भावरहित नग्नताको व्यर्थ कहा है ऐसा जानकर हे धीर! सदा आत्माकी भावना कर।।५५।।

देहादिसंगरहिओ, माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, स भावलिंगी हवे साहू।।५६।।

जो शरीरादि परिग्रहसे रहित है, मान कषायसे सब प्रकार मुक्त है और जिसका आत्मा आत्मामें रत रहता है वह साधु भावलिंगी है।।५६।।

ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा, अवसेसाइं वोसरे।।५७।।

भावलिंगी मुनि विचार करता है कि मैं निर्ममत्व भावको प्राप्त होकर ममता बुद्धिको छोड़ता हूँ और आत्मा ही मेरा आलंबन है, इसलिए अन्य समस्त पदार्थोंको छोड़ता हूँ।।५७।।

आदा खु मज्झ णाणे, आदा मे संवरे जोगे।
आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे।।५८।।

निश्चयसे मेरे ज्ञानमें आत्मा है, दर्शन और चारित्रमें आत्मा है, प्रत्याख्यानमें आत्मा है, संवर और योगमें आत्मा है।।

एगो मे सस्सदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।५९।।

नित्य तथा ज्ञान दर्शन लक्षणवाला एक आत्मा ही मेरा है, उसके सिवाय परद्रव्यके संयोगसे होनेवाले समस्त भाव बाह्य हैं-- मुझसे पृथक् हैं।।५९।।

भावेह भावसुद्धं, अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं, जइ इच्छसि सासयं सुक्खं।।६०।।

हे भव्य जीवो! यदि तुम शीघ्र ही चतुर्गतिको छोड़कर अविनाशी सुखकी इच्छा करते हो तो शुद्ध भावोंके द्वारा अत्यंत पवित्र और निर्मल आत्माकी भावना करो।।६०।।

जो जीवो भावंतो, जीवसहावं सुझावसंजुत्तो।
जो जरमरणविणासं, कुडइ फुडं लहइ णिव्वाणं।।६१।।

जो जीव अच्छे भावोंसे सहित होकर आत्माके स्वभावका चिंतन करता है वह जरामरणका विनाश करता है और निश्चय ही निर्वाणको प्राप्त होता है।।६१।।

जीवो जिणपण्णत्तो, णाणसहाओ य चेयणासहिओ।
सो जीवो णायव्वो, कम्मक्खयकारणणिमित्तो।।६२।।

जीव ज्ञानस्वभाववाला तथा चेतनासहित है ऐसा जिनेंद्र भगवान्‌ने कहा है। वह जीव ही कर्मक्षयका कारण जानना चाहिए।।६२।।

जेसिं जीवसहावो, णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ।
ते होंति भिण्णदेहा, सिद्धा वचिगोयरमतीदा।।६३।।

जिसके मनमें जीवका सद्भाव है उसका सर्वथा अभाव नहीं है। वे शरीरसे भिन्न तथा वचनके विजयसे परे होते हैं।।६३।।

अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेयणागुणमसद्दं।
जाणमलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।६४।।

जो रसरहित है, रूपरहित है, गंधरहित है, अव्यक्त है, चेतना गुणसे युक्त है, शब्दरहित है, इंद्रियोंके द्वारा अग्राह्य है और आकाररहित है उसे जीव जान।।६४।।

भावहि पंचपयारं, णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं।
भावणभावियसहिओ, दिवसिवसुहभायणो होइ।।६५।।

हे जीव! तू अज्ञानका नाश करनेवाले पाँच प्रकारके ज्ञानका शीघ्र ही नाश कर। क्योंकि ज्ञानभावनासे सहित जीव स्वर्ग और मोक्षके सुखका पात्र होता है।।६५।।

पढिएणवि किं कीरइ, किंवा सुणिएण भावरहिएण।
भावो कारणभूदो, सायारणयारभूदाणं।।६६।।

भावरहित पढ़ने अथवा भावरहित सुननेसे क्या होता है? यथार्थमें भाव ही गृहस्थपने और मुनिपनेका कारण है।।६६।।

दव्वेण सयलणग्गा, सारयतिरिया य सयलसधाया।
परिणामेण असुद्धा, ण भावसवणत्तणं पत्ता।।६७।।

द्रव्य सभी रूपसे नग्न रहते हैं। नारकी और तिर्यंचोंका समुदाय भी नग्न रहता है, परंतु परिणामोंसे अशुद्ध रहनेके कारण भाव मुनिपनेको प्राप्त नहीं होते।।६७।।

णग्गो पावइ दुक्खं, णग्गो संसारसायरे भमई।
णग्गो ण लहइ बोहिं, जिणभावणवज्जियं सुइरं।।६८।।

जो नग्न जिनभावनाकी भावनासे रहित है वह दीर्घकालतक दुःख पाता है, संसारसागरमें भ्रमण करता है और रत्नत्रयको नहीं प्राप्त करता है।।६८।।

अयसाण भायणेण य, किंते णग्गेण पावमलिगेण।
पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण।।६९।।

हे जीव! तुझे उस नग्न मुनिपनेसे क्या प्रयोजन? जो कि अपयशका पात्र है, पापसे मलिन है, पैशुन्य, हास्य, मात्सर्य और मायासे परिपूर्ण है।।६९।।

पयडहिं जिणवरलिंगं, अब्भिंतरभावदोसपरिसुद्धो।
भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियई।।७०।।

हे जीव! तू अंतरंग भावके दोषोंसे शुद्ध होकर जिनमुद्राको प्रकट कर -- धारण कर। क्योंकि भावदोषसे दूषित जीव बाह्य परिग्रहके संगमें अपने आपको मलिन कर लेता है।।७०।।

धम्मम्मि णिप्पवासो, दोसावासो य इच्छुफुल्लसमो।
णिप्फलणिग्गुणयारो, णउसवणो णग्गरूवेण।।७१।।

जो धर्मसे प्रवास करता है -- धर्मसे दूर रहता है, जिसमें दोषोंका आवास रहता है और जो ईखके फूलके समान निष्फल तथा निर्गुण रहता है वह नग्न रूपमें रहनेवाला नट श्रमण है -- साधु नहीं, नट है।।७१।।

जे रायसंगजुत्ता, जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा।
ण लहंति ते समाहिं, बोहिं जिणसासणे विमले।।७२।।

जो मुनि रागरूप परिग्रहसे युक्त हैं और जिनभावनासे रहित केवल बाह्यरूपमें निर्ग्रंथ हैं -- नग्न हैं वे पवित्र जिनशासनमें समाधि और बोधि -- रत्नत्रयको नहीं पाते हैं।।७२।।

भावेण होइ णग्गो, मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी, पयडदि लिंगं जिणाणाए।।७३।।

मुनि पहले मिथ्यात्व आदि दोषोंको छोड़कर भावसे -- अंतरंगसे नग्न होता है और पीछे जिनेंद्र भगवान्‌की आज्ञासे बाह्यलिंग -- बाह्य वेषको प्रकट करता है।।७३।।

भावो हि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो।
कम्ममलमलिणचित्तो, तिरियालयभायणो पावो।।७४।।

भाव ही इस जीवको स्वर्ग और मोक्षके पात्र बनाता है। जो मुनि भावसे रहित है वह कर्मरूपी मैलसे मलिन चित्र तथा तिर्यंच गतिका पात्र तथा पापी है।।७४।।

खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला।
चक्कहररायलच्छी, लब्भइ बोही सुभावेण।।७५।।

उत्तम भावके द्वारा विद्याधर, देव और मनुष्योंके हाथोंके अंजलिसे स्तुत बहुत बड़ी चक्रवर्ती राजाकी लक्ष्मी और रत्नत्रयरूप संपत्ति प्राप्त होती है।।७५।।

भावं तिविहपयारं, सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्टरुद्दं, सुहधम्मं जिणवरिंदेहिं।।७६।।

भाव तीन प्रकारके जानना चाहिए -- शुभ, अशुभ और शुद्ध। इनमें आर्त और रौद्रको अशुभ तथा धर्म्य ध्यानको शुभ जानना चाहिए। ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है।।७६।।

सुद्धं सुद्धसहावं, अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।
इदि जिणवरेहिं भणियं, जं सेयं तं समायरह।।७७।।

शुद्ध स्वभाववाला आत्मा शुद्ध भाव है, वह आत्मा आत्मामें ही लीन रहता है ऐसा जिन भगवान्‌ने कहा है। इन तीन भावोंमें जो श्रेष्ठ हो उसका आचरण कर।।७७।।

पयलियमाणकसाओ, पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो।

पावइ तिहुयणसारं, बोही जिणसासणे जीवो।।७८।।

जिसका मानकषाय पूर्ण रूपसे नष्ट हो गया है तथा मिथ्यात्व और चारित्र मोहके नष्ट होनेसे जिसका चित्त इष्ट अनिष्ट विषयोंमें समरूप रहता है ऐसा जीव ही जिनशासनमें त्रिलोकश्रेष्ठ रत्नत्रयको प्राप्त करता है।।७८।।

विसयविरत्तो सवणो, छद्दसवरकारणाइं भाऊण।

तित्थयरणामकम्मं, बंधइ अइरेण कालेण।।७९।।

विषयोंसे विरक्त रहनेवाला साधु सोलहकारण भावनाओंका चिंतवन कर थोड़े ही समयमें तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करता है।।७९।।

बारसविहतवयरणं, तेरसकिरियाउ भावतिविहेण।

धरहि मणमत्तदुरियं, णाणांकुसएण मुणिपवर।।८०।।

हे मुनिश्रेष्ठ! तू बारह प्रकारका तपश्चरण और तेरह प्रकारकी क्रियाओंका मन वचन कायसे चिंतन कर तथा मनरूपी मत्त हाथीको ज्ञानरूपी अंकुशसे वश कर।।८०।।

पंचविहचेलचायं, खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू।

भावं भावियपुव्वं, जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं।।८१।।

जहाँ पाँच प्रकारके वस्त्रोंका त्याग किया जाता है, जमीनपर सोया जाता है, दो प्रकारका संयम धारण किया जाता है, भिक्षासे भोजन किया जाता है और पहले आत्माके शुद्ध भावोंका विचार किया जाता है वह निर्मल जिनलिंग है।।८१।।

जह रयणाणं पवरं, वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं।

तह धम्माणं पवरं, जिणधम्मं भाविभवमहणं।।८२।।

जिस प्रकार रत्नोंमें हीरा और वृक्षोंके समूहमें चंदन सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त धर्मोंमें संसारको नष्ट करनेवाला जिनधर्म सर्वश्रेष्ठ है ऐसा तू चिंतवन कर।।८२।।

पूयादिसु वयसहियं, पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।

मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो धम्मो।।८३।।

पूजा आदि शुभ क्रियाओंमें व्रतसहित जो प्रवृत्ति है तथा मोह और क्षोभसे रहित आत्माका जो भाव है वह धर्म है ऐसा जिनशासनमें जिनेंद्र भगवान्ने कहा है।।८३।।

सद्दहदि य पत्तेदि य, रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।

पुण्णं भोयणिमित्तं, ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं।।८४।।

जो मुनि पुण्यका श्रद्धान करता है, प्रतीति करता है, उसे अच्छा समझता है और बार-बार उसे धारण करता है उसका यह सब कार्य भोगका ही कारण है, कर्मोंके क्षयका कारण नहीं है।।८४।।

अप्पा अप्पम्मि रओ, रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।
संसारतरणहेदू, धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।८५।।

रागादि समस्त दोषोंसे रहित होकर जो आत्मा आत्मस्वरूपमें लीन होता है वह संसारसमुद्रसे पार होनेका कारण धर्म है ऐसा श्री जिनेंद्रदेवने कहा है।।८५।।

अह पुण अप्पा णिच्छदि, पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं, संसारत्थो पुणो भणिदो।।८६।।

जो मनुष्य आत्माकी इच्छा नहीं करता -- आत्मस्वरूपकी प्रतीति नहीं करता वह भले ही समस्त पुण्यक्रियाओंको करता हो तो भी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता है। वह संसारी ही कहा गया है।।८६।।

एएण कारणेण य, तं अप्पा सद्दहेहि तिविहेण।
जेण य लभेह मोक्खं, तं जाणिज्जह पयत्तेण।।८७।।

इस कारण तुम मन वचन कायसे उस आत्माका श्रद्धान करो और यत्नपूर्वक उसे जानो जिससे कि मोक्ष प्राप्त कर सको।।८७।।

मच्छो वि सालिसिक्थो, असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं, भावह जिणभावणं णिच्चं।।८८।।

अशुद्ध भावोंका धारक शालिसिक्थ नामका मच्छ सातवें नरक गया ऐसा जानकर हे मुनि! तू निरंतर आत्मामें जिनदेवकी भावना कर।।८८।।

बाहिरसंगच्चाओ, गिरिसरिदरिकंदराइं आवासो।
सयलो णाणज्झयणो, णिरत्थओ भावरहियाणं।।८९।।

भावरहित मुनियोंका बाह्य परिग्रहका त्याग, पर्वत, नदी, गुफा, खोह आदिमें निवास और ज्ञानके लिए शास्त्रोंका अध्ययन यह सब व्यर्थ है।।८९।।

भंजसु इंदियसेणं, भंजसु मणोमक्कडं पयत्तेण।
मा जणरंजणकरणं, बाहिरवयवेस तं कुणसु।।९०।।

तू इंद्रियरूपी सेनाको भंग कर और मनरूपी बंदरको प्रयत्नपूर्वक वश कर। हे बाह्यव्रतके वेषको धारण करनेवाले! तू लोगोंको प्रसन्न करनेवाले कार्य मत कर।।९०।।

णवणोकसायवग्गं, मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए।
चेइयपवयणगुरूणं, करेहिं भत्तिं जिणाणाए।।९१।।

हे मुनि! तू भावोंकी शुद्धिसे नव नोकषायोंके समूहको तथा मिथ्यात्वको छोड़ और जिनेंद्रदेवकी आज्ञानुसार चैत्य, प्रवचन एवं गुरुओंकी भक्ति कर।।९१।।

तित्थयरभासियत्थं, गणधरदेवेहिं गंथियं सम्मं।

भावहि अणुदिणु अतुलं, विसुद्धभावेण सुयणाणं।।९२।।

जिसका अर्थ तीर्थंकर भगवान्के द्वारा कहा गया है तथा गणधरदेवने जिसकी सम्यक् प्रकारसे ग्रंथरचना की है, उस अनुपम श्रुतज्ञानका तू विशुद्ध भावनासे प्रतिदिन चिंतन कर।।९२।।

पाऊण णाणसलिलं, णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का।

हुंति सिवालयवासी, तिहुवणचूडामणी सिद्धा।।९३।।

हे जीव! मुनिगण ज्ञानरूपी जल पीकर दुर्दम्य तृषारूपी प्यासकी दाह और शोषण क्रियासे रहित होकर मोक्षमहलमें निवास करनेवाले और तीन लोकके चूडामणि सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।।९३।।

दस दस दो सुपरीसह, सहदि मुणी सयलकाल काएण।

सुत्तेण अप्पमत्तो, संजमघादं पमुत्तूण।।९४।।

हे मुनि! तू जिनागमके अनुसार प्रमादरहित होकर तथा संयमके घातको छोड़कर शरीरसे सदा बाईस परीषहोंको सह।।९४।।

जह पत्थरो ण भिज्जइ, परिट्ठिओ दीहकालमुदएण।

तह साहू वि ण भिज्जइ, उवसग्गपरीसहेहिंतो।।९५।।

जिस प्रकार पत्थर दीर्घकालतक पानीमें स्थित रहकर भी खंडित नहीं होता है उसी प्रकार उपसर्ग और परिषहोंसे साधु भी खंडित नहीं होता -- विचलित नहीं होता।।९५।।

भावहि अणुवेक्खाओ, अवरे पणवीसभावणा भावि।

भावरहिएण किं पुण, बाहिरलिंगेण कायव्वं।।९६।।

हे मुनि! तू अनित्यत्वादि बारह अनुप्रेक्षाओं तथा पंच महाव्रतोंकी पच्चीस भावनाओंका चिंतवन कर। भावरहित बाह्यलिंगसे क्या काम सिद्ध होता है?।।९६।।

सव्वविरओ वि भावहि, णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं।

जीवसमासाइं मुणी, चउदसगुणठाणणामाइं।।९७।।

हे मुनि! यद्यपि तू सर्वविरत है तो भी नौ पदार्थ, सात तत्त्व, चौदह जीवसमास और चौदह गुणस्थानोंका चिंतन कर।।९७।।

णवविहबंभं पयडहि, अब्बंभं दसविहं पमोत्तूण।

मेहुणसण्णासत्तो, भमिओसि भवण्णवे भीमे।।९८।।

हे मुनि! तू दस प्रकारके अब्रह्मका त्याग कर। नव प्रकारके ब्रह्मचर्यको प्रकट कर, क्योंकि मैथुनसंज्ञामें आसक्त होकर ही तू इस भयंकर संसारसमुद्रमें भ्रमण कर रहा है।।९८।।

भावसहिदो य मुणिणो, पावइ आराहणाचउक्कं च।

भावरहिदो य मुणिवर, भमइ चिरं दीहसंसारे।।९९।।

हे मुनिवर! भावसहित मुनिनाथ ही चार आराधनाओंको पाता है तथा भावरहित मुनि चिरकालतक दीर्घसंसारमें भ्रमण करता रहता है।।९९।।

पावंति भावसवणा, कल्लाणपरंपराइं सोक्खाइं।

दुक्खाइं दव्वसवणा, णरतिरियकुदेवजोणीए।।१००।।

भावलिंगी मुनि कल्याणोंकी परंपरा तथा अनेक सुखोंको पाते हैं और द्रव्यलिंगी मुनि मनुष्य, तिर्यंच और कुदेवोंकी योनिमें दुःख पाते हैं।।१००।।

छादालदोसदूसियमसणं गसिउं असुद्धभावेण।

पत्तोसि महावसणं, तिरियगईए अणप्पवसो।।१०१।।

हे मुनि! तूने अशुद्ध भावसे छ्यालीस दोषोंसे दूषित आहार ग्रहण किया इसलिए तिर्यंच गतिमें परवश होकर बहुत दुःख पाया है।।१०१।।

सच्चित्तभत्तपाणं, गिद्धीदप्पेणऽधी पभुत्तूण।

पत्तोसि तिव्वदुक्खं, अणाइकालेण तं चिंत।।१०२।।

हे मुनि! तूने अज्ञानी होकर अत्यंत आसक्ति और अभिमानके साथ सचित्त भोजनपान ग्रहण कर अनादि कालसे तीव्र दुःख प्राप्त किया है, इसका तू विचार कर।।१०२।।

कंदं मूलं बीयं, पुप्फं पत्तादि किंचि सच्चित्तं।

असिऊण माणगव्वं, भमिओसि अणंतसंसारे।।१०३।।

हे जीव! तूने मान और घमंडसे कंद मूल बीज पुष्प पत्र आदि कुछ सचित्त वस्तुओंको खाकर इस अनंत संसारमें भ्रमण किया है।।१०३।।

विणयं पंचपयारं, पालहि मणवयणकायजोएण।

अविणयणरा सुविहियं, तत्तो मुत्तिं ण पावंति।।१०४।।

हे मुनि! तू मन, वचन, कायरूप योगसे पाँच[1] प्रकारके विनयका पालन कर, क्योंकि अविनयी मनुष्य तीर्थंकर पद तथा मुक्तिको नहीं पाते हैं।।१०४।।

---

१. दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और उपचार ये विनयके पाँच भेद हैं।

णियसत्तिए महाजस, भत्तीराएण णिच्चकालम्मि।
तं कुण जिणभत्तिपरं, विज्जावच्चं दसवियप्पं।।१०५।।

हे महायशके धारक! तू भक्ति और रागसे निजशक्तिके अनुसार जिनेंद्रभक्तिमें तत्पर करनेवाला दस[१] प्रकारका वैयावृत्त्य कर।

जं किंचि कयं दोसं, मणवयकाएहिं असुहभावेण।
तं गरहि गुरूसयासे, गारव मायं च मोत्तूण।।१०६।।

हे मुनि! अशुभ भावसे मन, वचन, कायके द्वारा जो कुछ भी दोष तूने किया हो, गर्व और माया छोड़कर गुरुके समीप उसकी निंदा कर।।१०६।।

दुज्जणवयणचउक्कं, णिट्ठुरकडुयं सहंति सप्पुरिसा।
कम्ममलणासणट्ठं, भावेण य णिम्मया सवणा।।१०७।।

सज्जन तथा ममतासे रहित मुनीश्वर कर्मरूपी मलका नाश करनेके लिए अत्यंत कठोर और कटुक दुर्जन मनुष्योंके वचनरूपी चपेटाको अच्छे भावोंसे सहन करते हैं।।१०७।।

पावं खवइ असेसं, खमाय परिमंडिओ य मुणिपवरो।
खेयरअमरणराणं, पसंसणीओ धुवं होई।।१०८।।

क्षमा गुणसे सुशोभित श्रेष्ठ मुनि समस्त पापोंको नष्ट करता है तथा विद्याधर, देव और मनुष्योंके द्वारा निरंतर प्रशंसनीय रहता है।।१०८।।

इय णाऊण खमागुण, खमेहि तिविहेण सयलजीवाणं।
चिरसंचियकोहसिहिं, वरखमसलिलेण सिंचेह।। १०९।।

हे क्षमागुणके धारक मुनि! ऐसा जानकर मन वचन कायसे समस्त जीवोंको क्षमा कर और चिरकालसे संचित क्रोधरूपी अग्निको उत्कृष्ट क्षमारूपी जलसे सींच।।१०९।।

दिक्खाकालाईयं, भावहि अवियारदंसणविसुद्धो
उत्तमबोहिणिमित्तं, असारसंसारमुणिऊण।।११०।।

हे विचाररहित मुनि, तू उत्तम रत्नत्रयके लिए संसारको असार जानकर सम्यग्दर्शनसे विशुद्ध होता हुआ दीक्षाकाल आदिका विचार कर।।११०।।

सेवहि चउविहलिंगं, अब्भंतरलिंगसुद्धिमावण्णो।
बाहिरलिंगमकज्जं, होइ फुडं भावरहियाणं।।१११।।

१. आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इन दस प्रकारके मुनियोंकी सेवा करना दस प्रकारका वैयावृत्त्य है।

हे मुनि! तू भावलिंगकी शुद्धिको प्राप्त होकर चार[१] प्रकारके बाह्य लिंगोंका सेवन कर, क्योंकि भावरहित जीवोंका बाह्यलिंग स्पष्ट ही अकार्यकर -- व्यर्थ है।।१११।।

आहारभयपरिग्गहमेहुणसण्णाहि मोहिओसि तुमं।
भमिओ संसारवणे, अणाइकालं अणप्पवसो।।११२।।

हे मुनि! तू आहार, भय, परिग्रह और मैथुन संज्ञाओंसे मोहित हो रहा है इसीलिए पराधीन होकर अनादिकालसे संसाररूपी वनमें भटक रहा है।।११२।।

बाहिरसयणत्तावणतरुमूलाईणि उत्तरगुणाणि।
पालिह भावविसुद्धो, पूजालाहं ण ईहंतो।।११३।।

हे मुनि! तू भावोंसे विशुद्ध होकर पूजा, लाभ न चाहता हुआ बाहर सोना, आतापनयोग, धारण करना तथा वृक्षके मूलमें रहना आदि उत्तरगुणोंका पालन कर।।११३।।

भावहि पढमं तच्चं, बिदियं तदियं चउत्थ पंचमयं।
तियरणसुद्धो अप्पं, अणाइणिहणं तिवग्गहरं।।११४।।

हे मुनि! तू मन वचन कायसे शुद्ध होकर प्रथम जीव तत्त्व, द्वितीय अजीव तत्त्व, तृतीय आस्रव तत्त्व, चतुर्थ बंध तत्त्व, पंचम संवर तत्त्व तथा अनादि-निधन आत्मस्वरूप और धर्म अर्थ कामरूप त्रिवर्गको हरनेवाले निर्जरा एवं मोक्ष तत्त्वका चिंतन कर -- उन्हीं सबका विचार कर।।११४।।

जाव ण भावइ तच्चं, जाव ण चिंतेइ चिंतणीयाइं।
ताव ण पावइ जीवो, जरमरणविवज्जियं ठाणं।।११५।।

जब तक यह जीव तत्त्वोंकी भावना नहीं करता है और जबतक चिंता करनेयोग्य धर्म्य-शुक्लध्यान तथा अनित्यत्वादि बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतन नहीं करता है तबतक जरामरणसे रहित स्थानको -- मोक्षको नहीं पाता है।।११५।।

पावं हवइ असेसं, पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा।
परिणामादो बंधो, मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो।।११६।।

समस्त पाप और समस्त पुण्य परिणामसे ही होता है तथा बंध और मोक्ष भी परिणामसे ही होता है ऐसा जिनशासनमें कहा गया है।।११६।।

मिच्छत्त तह कसायाऽसंजमजोगेहिं असुहलेस्सेहिं।
बंधइ असुहं कम्मं, जिणवयणपरम्मुहो जीवो।।११७।।

---

१. केशलोच, वस्त्रत्याग, स्नानत्याग और पीछी-कमंडलु रखना ये चार बाह्य लिंग हैं।

जिनवचनसे विमुख रहनेवाला जीव मिथ्यात्व, कषाय, असंयम, योग और अशुभ लेश्याओंके द्वारा अशुभ कर्मको बाँधता है।।११७।।

तव्विवरीओ बंधइ, सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो।

दुविहपयारं बंधइ, संखेपेणेव वज्जरियं।।११८।।

उससे विपरीत जीव भावशुद्धिको प्राप्त होकर शुभ कर्मका बंध करता है। इस प्रकार जीव अपने शुभ भावसे दो प्रकारके कर्म बाँधता है ऐसा संक्षेपसे ही कहा है।।११८।।

णाणावरणादीहिं य, अट्ठहि कम्मेहिं वेढिओ य अहं।

डहिऊण इण्हिं पयडमि, अणंतणाणाइ गुणचित्तां।।११९।।

हे मुनि! ऐसा विचार कर कि मैं ज्ञानावरणादिक आठ कर्मोंसे घिरा हुआ हूँ। अब मैं इन्हें जलाकर अनंत ज्ञानादि गुणरूप चेतनाको प्रकट करता हूँ।।११९।।

सीलसहस्सट्ठारस, चउरासी गुणगणाण लक्खाइं।

भावहि अणुदिणु णिहिलं, असप्पलावेण किं बहुणा।।१२०।।

हे मुनि! तू अठारह हजार प्रकारका शील और चौरासी लाख प्रकारके गुण इन सबका प्रतिदिन चिंतन कर। व्यर्थ ही बहुत बकवाद करनेसे क्या लाभ है? ।।१२०।।

झायहि धम्मं सुक्कं, अट्टरउद्दं च झाणमुत्तूण ।

रुद्दट्टं झाइयाइं, इमेण जीवेण चिरकालं।।१२१।।

आर्त और रौद्र ध्यानको छोड़कर धर्म्य और शुक्ल इन दो ध्यानोंका ध्यान करो। आर्त और रौद्र ध्यान तो इस जीवने चिरकालसे ध्याये हैं।।१२१।।

जे केवि दव्वसवणा, इंदियसुहआउला ण छिंदंति।

छिंदंति भावसवणा, झाणकुठारेहिं भवरुक्खं।।१२२।।

जो कोई द्रव्यलिंगी मुनि इंद्रियसुखोंसे व्याकुल हो रहे हैं वे संसाररूपी वृक्षको नहीं काटते हैं, परंतु जो भावलिंगी मुनि हैं वे ध्यानरूपी कुठारोंसे इस संसाररूपी वृक्षको काट डालते हैं।।१२२।।

जह दीवो गब्भहरे, मारुयबाहा विवज्जिओ जलइ।

तह रायानिलरहिओ, झाणपईवो वि पज्जलई।।१२३।।

जिस प्रकार गर्भगृहमें रखा हुआ दीपक हवाकी बाधासे रहित होकर जलता है उसी प्रकार रागरूपी हवासे रहित ध्यानरूपी दीपक जलता रहता है।।१२३।।

झायहि पंच वि गुरवे, मंगलचउसरणलोयपरियरिए।

सुरणरखेयरमहिए, आराहणणायगं वीरे।।१२४।।

हे मुनि! तू पाँच परमेष्ठियोंका ध्यान कर, जो कि मंगलरूप है, चार शरणरूप हैं, लोकोत्तम हैं, मनुष्य देव और विद्याधरोंके द्वारा पूजित हैं, आराधनाओंके स्वामी है और वीर हैं।।१२४।।

णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण।
वाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति।।१२५।।

जो भव्य जीव अपने उत्तम भावसे ज्ञानमय निर्मल शीतल जलको पीकर व्याधि, बुढ़ापा, मरण, वेदना और दाहसे विमुक्त होते हुए सिद्ध होते हैं।।१२५।।

जह बीयम्मि य दड्ढे, ण वि रोहइ अंकुरो य महिवीढे।
तह कम्मबीयदड्ढे, भवंकुरो भावसवणाणं।।१२६।।

जिस प्रकार बीज जल जानेपर पृथिवीपृष्ठपर अंकुर नहीं उगता है उसी प्रकार कर्मरूपी बीजके जल जानेपर भावलिंगी मुनियोंके संसाररूपी अंकुर नहीं उगता है।। १२६।।

भावसवणो वि पावइ, सुक्खाइं दुहाइं दव्वसवणो य।
इय णाउं गुणदोसे, भावेण य संजुदो होह।।१२७।।

भावश्रमण -- भावलिंगी मुनि सुख पाता है और द्रव्यश्रमण -- द्रव्यलिंगी मुनि दुःख पाता है। इस प्रकार गुण और दोषोंको जानकर हे मुनि! तू भावसहित संयमी बन।।१२७।।

तित्थयरगणहराइं, अब्भुदयपरंपराइं सोक्खाइं।
पावंति भावसहिआ, संखेवि जिणेहिं वज्जरियं।।१२८।।

भावसहित मुनि, अभ्युदयकी परंपरासे युक्त तीर्थंकर, गणधर आदिके सुख पाते हैं ऐसा संक्षेपसे जिनेंद्रदेवने कहा है।।१२८।।

ते धण्णा ताण णमो, दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं।
भावसहियाण णिच्चं, तिविहेण पणट्ठमायाणं।।१२९।।

वे मुनि धन्य हैं और उन मुनियोंको मेरा मन वचन कायसे निरंतर नमस्कार हो जो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे शुद्ध हैं, भावसहित हैं तथा जिनकी माया नष्ट हो गयी है।।१२९।।

इड्ढिमतुलं विउव्विय, किंणरकिंपुरिसअमरखयरेहिं।
तेहिं वि ण जाइ मोहं, जिणभावणभाविओ धीरो।।१३०।।

जिनभावनासे सहित धीर वीर मुनि किंनर, किंपुरुष, कल्पवासी देव और विद्याधरोंके द्वारा विक्रियासे दिखायी हुई अतुल्य ऋद्धिको देखकर उनके द्वारा भी मोहको प्राप्त नहीं होता।।१३०।।

किं पुण गच्छइ मोहं, णरसुरसुक्खाण अप्पसाराणं।
जाणंतो पस्संतो, चिंतंतो मोक्ख मुणिधवलो।।१३१।।

जो श्रेष्ठ मुनि मोक्षको जानता है, देखता है और उसका विचार करता है वह क्या अल्पसारवाले मनुष्यों और देवोंके सुखोंमें मोहको प्राप्त हो सकता है? ।।१३१।।

उत्थरइ जा ण जरओ, रोयग्गी जा ण डहइ देहउडिं।

इंदियबलं ण वियलइ, ताव तुमं कुणइ अप्पहियं।।१३२।।

हे मुनि! जब तक बुढ़ापा आक्रमण नहीं करता है, रोगरूपी अग्नि जब तक शरीररूपी कुटीको नहीं जलाती है और इंद्रियोंका बल जबतक नहीं घटता है तबतक तू आत्माका हित कर ले।।१३२।।

छज्जीव सडायदणं, णिच्चं मणवयणकायजोएहिं।

कुरु दय परिहर मुणिवर, भावि अपुव्वं महासत्त।।१३३।।

हे उत्कृष्ट धैर्यके धारक मुनिवर! तू मन वचन कायरूप भोगोंसे निरंतर छह कायके जीवोंकी दया कर। छह अनायतनोंका त्याग कर और अपूर्व आत्मभावनाका चिंतन कर।।१३३।।

दसविहपाणाहारो, अणंतभवसायरे नमंतेण।

भोयसुहकारणट्ठं, कदो य तिविहेण सयलजीवाणं।।१३४।।

हे मुनि! अनंत संसारसागरमें घूमते हुए तूने भोग सुखके निमित्त मन वचन कायसे समस्त जीवोंके दस प्रकारके प्राणोंका आहार किया है।।१३४।।

पाणिवहेहि महाजस, चउरासीलक्खजोणिमज्झम्मि।

उप्पजंत मरंतो, पत्तोसि णिरंतरं दुक्खं।।१३५।।

हे महायशके धारक मुनि! प्राणिवधके कारण तूने चौरासी लाख योनियोंमें उत्पन्न होते और मरते हुए निरंतर दुःख प्राप्त किया है।।१३५।।

जीवाणमभयदाणं, देहि मुणी पाणिभूयसत्ताणं।

कल्लाणसुहणिमित्तं, परंपरा तिविहसुद्धीए।।१३६।।

हे मुनि! तू परंपरासे तीर्थंकरोंके कल्याणसंबंधी सुखके लिए मन वचन कायकी शुद्धतासे प्राणीभूत अथवा सत्त्व नामधारक समस्त जीवोंको अभयदान दे।।१३६।।

असियसय किरियवाई, अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी।

सत्तट्ठी अण्णाणी, वेणइया होंति बत्तीसा।।१३७।।

क्रियावादियोंके एकसौ अस्सी, अक्रियावादियोंके चौरासी, अज्ञानियोंके सड़सठ और वैनयिकोंके बत्तीस भेद हैं। इस प्रकार सब मिलाकर मिथ्यादृष्टियोंके ३६३ भेद हैं।।१३७।।

ण मुयइ पयडि अभव्वो, सुट्ठु वि आयण्णिऊण जिणधम्मं।

गुडदुद्धं पिवंता, ण पण्णया णिव्विसा होंति।।१३८।।

अभव्य जीव जिनधर्मको अच्छी तरह सुनकर भी अपने स्वभावको -- मिथ्यात्वको नहीं छोड़ता है, सो ठीक ही है, क्योंकि गुड़मिश्रित दूधको पीते हुए भी साँप विषरहित नहीं होते हैं।।१३८।।

मिच्छत्तछण्णदिट्ठी, दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं ।

धम्मं जिणपण्णत्तं, अभव्वजीवो ण रोचेदि।।१३९।।

जिसकी दृष्टि मिथ्यात्वसे आच्छादित है ऐसा अभव्य जीव मिथ्यामतरूपी दोषोंसे उत्पन्न हुई दुर्बुद्धिके कारण जिनोपदिष्ट धर्मका श्रद्धान नहीं करता है।।१३९।।

कुच्छियधम्मम्मि रओ, कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो।

कुच्छियतवं कुणंतो, कुच्छियगइभायणं होई।।१४०।।

कुत्सित धर्ममें लीन, कुत्सित पाखंडियोंकी भक्तिसे सहित और कुत्सित तप करनेवाला मनुष्य कुत्सित गतिका पात्र होता है -- नरकादि खोटी गतियोंमें उत्पन्न होता है।।१४०।।

इय मिच्छत्तावासे, कुणयकुसत्थेहिं मोहिओ जीवो।

भमिओ अणाइकालं, संसारे धीर चिंतेहि।।१४१।।

इस प्रकार मिथ्यात्वके निवासभूत संसारसे मिथ्यानय और मिथ्याशास्त्रोंसे मोहित हुआ जीव अनादि कालसे भ्रमण कर रहा है। हे धीर मुनि! तू ऐसा विचार कर।।१४१।।

पासंडि तिण्णिसया, तिसट्ठिभेया उमग्ग मुत्तूण।

रुंभइ मणु जिणमग्गे, असप्पलावेण किं बहुणा।।१४२।।

हे जीव! तू तीनसौ त्रेसठ भेदरूप पाखंडियोंके उन्मार्गको छोड़कर जिनमार्गमें अपना मन रोक -- स्थिर कर। निष्प्रयोजन बहुत कथन करनेसे क्या लाभ?।।१४२।।

जीवविमुक्को सवओ, दंसणमुक्को य होइ चलसवओ।

सवओ लोयअपुज्जो, लोउत्तरयम्मि चलसवओ।।१४३।।

इस लोकमें जीवरहित शरीर शव कहलाता है और सम्यग्दर्शनसे रहित जीव चल शव -- चलता-फिरता मुर्दा कहलाता है। इनमेंसे शव इस लोकमें अपूज्य है और चल शव -- मिथ्यादृष्टि परलोकमें अपूज्य है।।१४३।।

जह तारयाण चंदो, मयराओ मयउलाण सव्वाणं।

अहिओ तह सम्मत्तो, रिसिसावय दुविहधम्माणं।।१४४।।

जिस प्रकार समस्त ताराओंमें चंद्रमा और समस्त मृगसमूहमें सिंह प्रधान है उसी प्रकार मुनि और श्रावक संबंधी दोनों प्रकारके धर्मोंमें सम्यग्दर्शन प्रधान है।।१४४।।

जह फणिराओ सोहइ, फणमणिमाणिक्ककिरणविप्फुरिओ।
तह विमलदंसणधरो, जिणभत्ती पवयणे जीवो।।१४५।।

जिस प्रकार नागेंद्र फणाके मणियोंमें स्थित माणिक्यके किरणोंसे देदीप्यमान होता हुआ सुशोभित होता है उसी प्रकार निर्मल सम्यक्त्वका धारक जिनभक्त जीव जिनागममें सुशोभित होता है।।१४५।।

जह तारागणसहियं, ससहरबिंबं खमंडले विमले।
भाविय तववयविमलं, जिणलिंगं दंसणविसुद्धं।१४६।।

जिस प्रकार निर्मल आकाश मंडलमें ताराओंके समूहसे सहित चंद्रमाका बिंब शोभित होता है उसी प्रकार तप और व्रतसे विमल तथा सम्यग्दर्शनसे विशुद्ध जिनलिंग शोभित होता है।।१४६।।

इय णाउं गुणदोसं, दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणाणं, सोवाणं पढममोक्खस्स।।१४७।।

इस प्रकार गुण और दोषको जानकर हे भव्य जीवो! तुम उस सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको शुद्ध भावसे धारण करो जो कि गुणरूपी रत्नोंमें श्रेष्ठ है तथा मोक्षकी पहली सीढी है।।१४७।।

कत्ता भोइ अमुत्तो, सरीरमित्तो अणाइणिहणो य ।
दंसणणाणुवओगो, णिद्दिट्ठो जिणवरिंदेहिं।।१४८।।

यह आत्मा कर्ता है, भोक्ता है, अमूर्तिक है, शरीरप्रमाण है, अनादि-निधन है और दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोगरूप है ऐसा जिनेंद्र भगवान्‌ने कहा है।।१४८।।

दंसणणाणावरणं, मोहणियं अंतराइयं कम्मं।
णिट्ठवइ भवियजीवो, सम्मं जिणभावणाजुत्तो।।१४९।।

भलीभाँति जिनभावनासे युक्त भव्य जीव दर्शनावरण, ज्ञानावरण, मोहनीय और अंतराय कर्मको नष्ट करता है।।१४९।।

बलसोक्खणाणदंसण, चत्तारि वि पायडा गुणा होंति।
णट्ठे घाइचउक्के, लोयालोयं पयासेदि।।१५०।।

घातिचतुष्कके नष्ट होनेपर अनंत बल, अनंत सुख, अनंत ज्ञान और अनंत दर्शन ये चारों गुण प्रकट होते हैं तथा यह जीव लोकालोकको प्रकाशित करने लगता है।।१५०।।

णाणी सिव परमेट्ठी, सव्वण्हू विण्हू चउमुहो बुद्धो।
अप्पो विय परमप्पो, कम्मविमुक्को य होइ फुडं।।१५१।।

यह आत्मा कर्मसे विमुक्त होनेपर स्पष्ट ही परमात्मा हो जाता है और ज्ञानी, शिव, परमेष्ठी,

सर्वज्ञ, विष्णु, चतुर्मुख तथा बुद्ध कहा जाने लगता है।

भावार्थ -- कर्मविमुक्त आत्मा केवलज्ञानसे युक्त होता है अतः ज्ञानी कहलाता है, कल्याणरूप है अतः शिव कहलाता है, परमपदमें स्थित है अतः परमेष्ठी कहलाता है, समस्त पदार्थोंको जानता है अतः सर्वज्ञ कहलाता है, ज्ञानके द्वारा समस्त लोक-अलोकमें व्यापक है अतः विष्णु कहलाता है, चारों ओरसे सबको देखता है अतः चतुर्मुख कहलाता है और ज्ञाता है अतः बुद्ध कहलाता है।।१५१।।

इय घाइकम्ममुक्को, अट्ठारहदोसवज्जिओ सयलो।
तिहुवणभवणपदीवो, देऊ मम उत्तमं बोहिं।।१५२।।

इस प्रकार घातिया कर्मोंसे मुक्त, अठारह दोषोंसे वर्जित, परमौदारिक शरीरसे सहित और तीन लोकरूपी घरको प्रकाशित करनेके लिए दीपकस्वरूप अरहंत परमेष्ठी मुझे उत्तम रत्नत्रय प्रदान करें।।१५२।।

जिणवरचरणंबुरुहं, णमंति जे परमभत्तिरायेण।
ते जम्मवेलिमूलं, खणंति वरभावसत्थेण।।१५३।।

जो भव्य जीव उत्कृष्ट भक्ति तथा अनुरागसे भी जिनेंद्र देवके चरणकमलोंको नमस्कार करते हैं वे उत्कृष्ट भावरूपी शस्त्रके द्वारा जन्मरूपी वेलकी जड़को खोद देते हैं।।१५३।।

जह सलिलेण ण लिप्पइ, कमलिणिपत्तं सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ, कसायविसएहिं सप्पुरिसो।।१५४।।

जिस प्रकार कमलिनीका पत्र स्वभावसे ही जलसे लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार सत्पुरुष -- सम्यग्दृष्टि जीव भावके द्वारा कषाय और विषयोंसे लिप्त नहीं होता है।।१५४।।

तेवि य भणामिहं जे, सयलकलासीलसंजयगुणेहिं।
बहुदोसाणावासो, सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो।।१५५।।

हम उन्हींको मुनि कहते हैं जो समस्त कला, शील और संयम आदि गुणोंसे युक्त हैं। जो अनेक दोषोंका स्थान तथा अत्यंत मलिनचित्त है वह मुनि तो दूर रहा, श्रावकके भी समान नहीं है।।१५५।।

ते धीरवीरपुरिसा, खमदमखग्गेण विप्फुरंतेण।
दुज्जयपबलबलुद्धरकसायभडणिज्जिया जेहिं।।१५६।।

वे पुरुष धीर-वीर हैं जिन्होंने चमकती हुई क्षमा और इंद्रियदमनरूपी तलवारके द्वारा कठिनतासे जीतनेयोग्य, अतिशय बलवान् तथा बलसे उत्कट कषायरूपी योद्धाओंको जीत लिया है।।१५६।।

धण्णा ते भयवंता, दंसणणाणग्गपवरहत्थेहिं।
विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं।।१५७।।

वे भगवान् धन्य हैं जिन्होंने दर्शन ज्ञानरूपी मुख्य तथा श्रेष्ठ हाथोंसे विषयरूपी समुद्रमें पड़े हुए भव्य जीवोंको पार कर दिया है।।१५७।।

मायावेल्लि असेसा, मोहमहातरुम्मि आरूढा।
विसयविसपुप्फफुल्लिय, लुणंति मुणि णाणसत्थेहिं।।१५८।।

मोहरूपी महावृक्षपर चढ़ी हुई तथा विषयरूपी विषपुष्पोंसे फूली हई संपूर्ण मोहरूपी लताको मुनिजन ज्ञानरूपी शस्त्रके द्वारा छेदते हैं।।१५८।।

मोहमयगारवेहिं य, मुक्का जे करुणभावसंजुत्ता।
ते सव्वदुरियखंभं, हणंति चारित्तखग्गेण।।१५९।।

जो मुनि मोह, मद और गौरवसे रहित तथा करुणाभावसे सहित हैं वे चारित्ररूपी तलवारके द्वारा समस्त पापरूपी स्तंभको काटते हैं।।१५९।।

गुणगणमणिमालाए, जिणमयगयणे णिसायरमुणिंदो।
तारावलिपरियरिओ, पुण्णिमइंदुव्व पवणपहे।।१६०।।

जिस प्रकार आकाशमें ताराओंकी पंक्तिसे घिरा हुआ पूर्णिमाका चंद्र सुशोभित होता है उसी प्रकार जिनमतरूपी आकाशमें गुणसमुदायरूपी मणियोंकी मालाओंसे युक्त मुनींद्ररूपी चंद्रमा सुशोभित होता है।।१६०।।

चक्कहररामकेसवसुरवरजिणगणहराइ सोक्खाइं।
चारणमुणिरिद्धीओ, विसुद्धभावा णरा पत्ता।।१६१।।

विशुद्ध भावोंके धारक पुरुष चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, देवेंद्र, जिनेंद्र और गणधरादिके सुखोंको तथा चारणमुनियोंकी ऋद्धियोंको प्राप्त होते हैं।।१६१।।

सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमं परमविमलमतुलं।
पत्ता वरसिद्धिसुहं, जिणभावणभाविया जीवा।।१६२।।

जिनेंद्रदेवकी भावनासे विशोभित जीव उस उत्तम मोक्षसुखको पाते हैं जो कि आनंदरूप है, जरामरणके चिह्नोंसे रहित है, अनुपम है, उत्तम है, अत्यंत निर्मल है और तुलनारहित है।।१६२।।

ते मे तिहुवणमहिया, सिद्धा सुद्धा णिरंजणा णिच्चा।
दिंतु वरभावसुद्धिं, दंसणणाणे चरित्ते य।।१६३।।

वे सिद्ध परमेष्ठी जो कि त्रिभुवनके द्वारा पूज्य, शुद्ध, निरंजन तथा नित्य हैं, मेरे दर्शन, ज्ञान और चारित्रमें शुद्धता प्रदान करें।।१६३।।

किं जंपिएण बहुणा, अत्थो धम्मो य काममोक्खो य।

अण्णेवि य वावारा, भावम्मि परिट्ठिया सव्वे।।१६४।।

बहुत कहनेसे क्या? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ तथा अन्य जितने भी व्यापार हैं वे सब भावोंमें ही अवस्थित हैं -- भावोंके ही अधीन हैं।।१६४।।

इय भावपाहुडमिणं, सव्वं बुद्धेहि देसियं सम्मं।

जो पढइ सुणइ भावइ, सो पावइ अविचलं ठाणं।।१६५।।

इस प्रकार सर्वज्ञदेवके द्वारा उपदिष्ट इस भावपाहुड ग्रंथको जो भलीभाँति पढ़ता है, सुनता है और उसका चिंतन करता है वह अविचल स्थान प्राप्त करता है।।१६५।।

इस प्रकार भावपाहुड पूर्ण हुआ।

***

मोक्षप्राभृतम्

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण।

चइऊण य परदव्वं, णमो णमो तस्स देवस्स।।१।।

जिन्होंने कर्मोंका क्षय करके तथा परद्रव्यका त्याग कर ज्ञानमय आत्माको प्राप्त कर लिया है उन श्री सिद्धपरमेष्ठीरूप देवके लिए बार-बार नमस्कार हो।।१।।

णमिऊण य तं देवं, अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं।

वोच्छं परमप्पाणं, परमपयं परमजोईणं।।२।।

अनंत उत्कृष्ट ज्ञान तथा अनंत उत्कृष्ट दर्शनसे युक्त, निर्मलस्वरूप उन सर्वज्ञ वीतरागदेवको नमस्कार कर मैं परम योगियोंके लिए परमपदरूप परमात्माका कथन करूँगा।।२।।

जं जाणिऊण जोई, [1]जोअत्थो जोइऊण अणवरयं।

अव्वाबाहमणंतं, अणोवमं हवइ णिव्वाणं।।३।।

जिस आत्मतत्त्वको जानकर तथा जिसका निरंतर साक्षात् कर योगी ध्यानस्थ मुनि बाधारहित, अनंत, अनुपम निर्वाणको प्राप्त होता है।। ३।।

तिपयारो सो अप्पा, [2]परभिंतरबाहिरो दु हेऊणं।

तत्थ परो झाइज्जइ, अंतोवायेण चयइ बहिरप्पा।।४।।

१. यं अर्थं जोइऊण दृष्ट्वा इति संस्कृतटीका, पुस्तकान्तरे जोयत्थो योगस्थो ध्यानस्थ इत्यर्थः स्वीकृतः।

२. 'परमंतरबाहिरो दु देहीणं' इति पाठो जयचन्द्रवचनिकायां स्वीकृतः।

वह आत्मा परमात्मा, अभ्यंतरात्मा और बहिरात्माके भेदसे तीन प्रकारका है। इनमेंसे बहिरात्माको छोड़कर अंतरात्माके उपायसे परमात्माका ध्यान किया जाता है। हे योगिन्! तुम बहिरात्माका त्याग करो।।४।।

अक्खाणि बाहिरप्पा, अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो।
कम्मकलंकविमुक्को, परमप्पा भण्णए देवो।।५।।

इंद्रियाँ बहिरात्मा हैं, आत्माका संकल्प अंतरात्मा है और कर्मरूपी कलंकसे रहित आत्मा परमात्मा कहलाता है। परमात्माकी देवसंज्ञा है।।५।।

मलरहिओ कलचत्तो, अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमेट्ठी परमजिणो, सिवंकरो सासओ सिद्धो।।६।।

वह परमात्मा मलरहित है, कला अर्थात् शरीरसे रहित है, अतींद्रिय है, केवल है, विशुद्धात्मा है, परमेष्ठी है, परमजिन है, शिवशंकर है, शाश्वत है और सिद्ध है।।६।।

[१]आरुहवि अंतरप्पा, बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा, उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं।।७।।

मन वचन काय इन तीन योगोंसे बहिरात्माको छोड़कर तथा अंतरात्मापर आरूढ़ होकर अर्थात् भेदज्ञानके द्वारा अंतरात्माका अवलंबन लेकर परमात्माका ध्यान किया जाता है, ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है।।७।।

बहिरत्थे फुरियमणो, इंदियदारेण णियसरूवचुओ।
णियदेहं अप्पाणं, अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ।।८।।

बाह्य पदार्थमें जिसका मन स्फुरित हो रहा है तथा इंद्रियरूप द्वारके द्वारा जो निजस्वरूपसे च्युत हो गया है ऐसा मूढ़दृष्टि -- बहिरात्मा पुरुष अपने शरीरको ही आत्मा समझता है।।८।।

णियदेहसरिस्सं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण।
अच्चेयणं पि गहियं, झाइज्जइ [२]परमभागेण।।९।।

ज्ञानी मनुष्य निज शरीरके समान परशरीरको देखकर भेदज्ञानपूर्वक विचार करता है कि देखो, इसने अचेतन शरीरको भी प्रयत्नपूर्वक ग्रहण कर रक्खा है।।९।।

---

१ इस गाथाके पूर्व समस्त प्रतियोंमें तदुक्तं पाठ है, परंतु उसके आगे कोई गाथा उद्धृत नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि 'आरुहवि --' आदि गाथा ही उद्धृतगाथा है, क्योकि यह गाथा नं ४ की गाथार्थसे गत हो जाती है। संस्कृत टीकाकारने इसे मूल ग्रंथ समझकर इसकी टीका कर दी है। इसलिए यह मूलमें शामिल हो गयी है। यह गाथा कहाँकी है इसकी खोज आवश्यक है।

२. मिच्छभावेण इति पुस्तकान्तरपाठः।

सपरज्झवसाएणं, देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं।
सुयदाराईविसए, मणुयाणं वड्ढए मोहो।।१०।।

[१]स्वपराध्यवसायके कारण अर्थात् परको आत्मा समझनेके कारण यह जीव अज्ञानवश शरीरादिको आत्मा जानता है। इस विपरीत अभिनिवेशके कारण ही मनुष्योंका पुत्र तथा स्त्री आदि विषयोंमें मोह बढ़ता है।।१०।।

मिच्छाणाणेसु रओ, मिच्छाभावेण भाविओ संतो।
मोहोदएण पुणरवि, अंगं सं मण्णए मणुओ।।११।।

यह मनुष्य मोहके उदयसे मिथ्याज्ञान में रत है तथा मिथ्याभावसे वासित होता हुआ फिर भी शरीरको आत्मा मान रहा है।।११।।

जो देहे णिरवेक्खो, णिद्दंदो णिम्ममो णिरारंभो।
आदसहावे सुरओ, जोई सो लहइ णिव्वाणं।।१२।।

जो शरीरमें निरपेक्ष है, द्वंद्वरहित है, ममतारहित है, आरंभरहित है और आत्मस्वभावमें सुरत है -- संलग्न है वह योगी निर्वाणको प्राप्त होता है।।१२।।

[१]परदव्वरओ बज्झइ, विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।
एसो जिणउवएसो, समासओ बंधमोक्खस्स।।१३।।

परद्रव्योंमें रत पुरुष नाना कर्मोंसे बंधको प्राप्त होता है और परद्रव्यसे विरत पुरुष नाना कर्मोंसे मुक्त होता है। बंध और मोक्षके विषयमें जिनेंद्र भगवान्का यह संक्षेपसे उपदेश है।।१३।।

सद्दव्वरओ सवणो, सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्तपरिणदो उण, खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि।।१४।।

स्वद्रव्यमें रत साधु नियमसे सम्यग्दृष्टि होता है और सम्यक्त्वरूप परिणत हुआ साधु दुष्ट आठ कर्मोंको नष्ट करता है।।१४।।

जो पुण परदव्वरओ, मिच्छादिट्ठी हवेइ णो साहू।
मिच्छत्तपरिणदो उण, बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं।।१५।।

---

१. 'स्वं इति परस्मिन् अध्यवसायः स्वपराध्यवसायः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'यह आत्मा है' इस प्रकार परपदार्थमें जो निश्चय होता है वह स्वपराध्यवसाय कहलाता है।।

१. रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।।१५०।। -- समयप्राभृत

जो साधु परद्रव्यमें रत है वह मिथ्यादृष्टि होता है और मिथ्यात्वरूप परिणत हुआ साधु दुष्ट आठ कर्मोंसे बँधता है।।१५।।

परदव्वादो दुगई, सद्दव्वादो हु सुग्गई हवइ।
इय णाऊण सदव्वे, कुणह रई विरइ इयरम्मि।।१६।।

परद्रव्यसे दुर्गति और स्वद्रव्यसे निश्चित ही सुगति होती है ऐसा जानकर स्वद्रव्यमें रति करो और परद्रव्यमें विरति करो।।१६।।

आदसहावादण्णं, सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि।
तं परदव्वं भणियं, अवितत्थं सव्वदरसीहिं।।१७।।

आत्मभावसे अतिरिक्त जो सचित्त-अचित्त अथवा मिश्र द्रव्य है वह सब परद्रव्य है, ऐसा यथार्थरूपसे पदार्थको जाननेवाले सर्वज्ञदेवने कहा है।।१७।।

दुट्ठट्ठकम्मरहियं, अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं।
सुद्धं जिणेहि कहियं, अप्पाणं हवदि सद्दव्वं।।१८।।

आठ दुष्ट कर्मोंसे रहित, अनुपम, ज्ञानशरीरी, नित्य और शुद्ध जो आत्मद्रव्य है उसे जिनेंद्र भगवान्ने स्वद्रव्य कहा है।।१८।।

जे झायदि सद्दव्वं, परदव्वपरम्मुहा दु सुचरित्ता।
ते जिणवराण मग्गं, अणुलग्गा लहदि णिव्वाणं।।१९।।

जो स्वद्रव्यका ध्यान करते हैं, परद्रव्यसे पराङ्मुख रहते हैं और सम्यक्चारित्रका निरतिचार पालन करते हुए जिनेंद्रदेवके मार्गमें लगे रहते हैं वे निर्वाणको प्राप्त होते हैं।।१९।।

जिणवरमएण जोई, झाणे झाएइ सुद्धमप्पाणं।
जेण लहइ णिव्वाणं, ण लहइ किं तेण सुरलोयं।।२०।।

जो योगी ध्यानमें जिनेंद्रदेवके मतानुसार शुद्ध आत्माका ध्यान करता है वह स्वर्गलोकको प्राप्त होता है सो ठीक है, क्योंकि जिस ध्यानसे निर्वाण प्राप्त हो सकता है उससे क्या स्वर्गलोक प्राप्त नहीं हो सकता? ।।२०।।

जो जाइ जोयणसयं, दियहेणेक्केण लेवि गुरुभारं।
सो किं कोसद्धं पि हु, ण सक्कए जाहु भुवणयले।।२१।।

जो मनुष्य बहुत भारी भार लेकर एक दिनमें सौ योजन जाता है वह क्या पृथिवीतलपर आधा कोश भी नहीं जा सकता? अवश्य जा सकता है।।२१।।

जो कोडिए ण जिप्पइ, सुहडो संगाम एहिं सव्वेहिं।

सो किं जिंपइ इक्किं, णरेण संगामए सुहडो।।२२।।

जो सुभट संग्राममें करोडोंकी संख्यामें विद्यमान सब योद्धाओंके द्वारा मिलकर भी नहीं जीता जाता वह क्या एक योद्धाके द्वारा जीता जा सकता है? अर्थात् नहीं जीता जा सकता।।२२।।

सग्गं तवेण सव्वो, वि पावए तहि वि झाणजोएण।

जो पावइ सो पावइ, परलोए सासयं सोक्खं।।२३।।

तपसे स्वर्ग सभी प्राप्त करते हैं, पर जो ध्यानसे स्वर्ग प्राप्त करता है वह परभवमें शाश्वत--अविनाशी मोक्षसुखको प्राप्त होता है।।२३।।

अइसोहणजोएणं, सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य।

कालाईलद्धीए, अप्पा परमप्पओ हवदि।।२४।।

जिस प्रकार अत्यंत शुभ सामग्रीसे -- शोधनसामग्रीसे अथवा सुहागासे स्वर्ण शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार काल आदि लब्धियोंसे आत्मा परमात्मा हो जाता है।।२४।।

[१]वरवयतवेहि सग्गो, मा दुक्खं होउ निरइ इयरेहिं।

छायातवट्ठियाणं, पडिवालंताण गुरुभेयं।।२५।।

व्रत और तपके द्वारा स्वर्गका प्राप्त होना अच्छा है परंतु अव्रत और अतपके द्वारा नरकके दुःख प्राप्त हो जाना अच्छा नहीं है। छाया और घाममें बैठकर इष्टस्थानकी प्रतीक्षा करनेवालोंमें बड़ा भेद है।।२५।।

जो इच्छइ निस्सरिदुं, संसारमहण्णवस्स रुंदस्स।

कम्मिंधणाण डहणं, सो झायइ अप्पयं सुद्धं।।२६।।

जो मुनि अत्यंत विस्तृत संसार महासागरसे निकलनेकी इच्छा करता है वह कर्मरूपी ईंधनको जलानेवाले शुद्ध आत्माका ध्यान करता है।।२६।।

सव्वे कसाय मोत्तुं, गारवमयरायदोसवामोहं।

लोयववहारविरदो, अप्पा झाएइ झाणत्थो।।२७।।

ध्यानस्थ मुनि समस्त कषायों और गारव मद राग द्वेष तथा व्यामोहको छोड़कर लोकव्यवहारसे विरत होता हुआ आत्माका ध्यान करता है।।२७।।

---

१. वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्बत नारकम्।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।। -- इष्टोपदेशे पूज्यपादस्य

मिच्छत्तं अण्णाणं, पावं पुण्णं चएवि तिविहेण।
मोणव्वएण जोई, जोयत्थो जोयए अप्पा।।२८।।

मिथ्यात्व, अज्ञान, पाप और पुण्यको मन वचन कायरूप त्रिविधयोगोंसे छोड़कर जो योगी मौन व्रतसे ध्यानस्थ होता है वही आत्माको द्योतित करता है -- प्रकाशित करता है-- आत्माका साक्षात्कार करता है।।२८।।

[१]जं मए दिस्सदे रूवं, तण्ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे णंतं, तम्हा जंपेमि केण हं।।२९।।

जो रूप मेरे द्वारा देखा जाता है वह बिलकुल नहीं जानता है और जो जानता है वह दिखायी नहीं देता, तब मैं किसके साथ बात करूँ?।।२९।।

सव्वासवणिरोहेण, कम्मं खवदि संचिदं।
जोयत्थो जाणए जोई, जिणदेवेण भासियं।।३०।।

सब प्रकारके आस्रवोंका निरोध होनेसे संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं तथा ध्याननिमग्न योगी केवलज्ञानको उत्पन्न करता है ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है।।३०।।

[२]जो सुत्तो ववहारे, सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे, सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।।३१।।

जो मुनि व्यवहारमें सोता है वह आत्मकार्यमें जागता है और जो व्यवहारमें जागता है वह आत्मकार्यमें सोता है।।३१।।

इय जाणिऊण जाई, ववहारं चयइ सव्वहा दव्वं।
झायइ परमप्पाणं, जह भणियं जिणवरिंदेण।।३२।।

ऐसा जानकर योगी सब तरहसे सब प्रकारके व्यवहारको छोड़ता है और जिनेंद्रदेवने जैसा कहा है वैसा परमात्माका ध्यान करता है।।३२।।

पंच महव्वयजुत्तो, पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
रयणत्तयसंजुत्तो, झाणज्झयणं सया कुणइ।।३३।।

---

१. यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम्।।१८।। -- समाधिशतके पूज्यपादस्य

२. व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे ।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे।।७८।। -- समाधिशतके पूज्यपादस्य

हे मुनि! तू पाँच महाव्रतोंसे युक्त होकर पाँच समितियों तथा तीन गुप्तियोंमें प्रवृत्ति करता हुआ रत्नत्रयसे युक्त हो सदा ध्यान और अध्ययन कर।।३३।।

रयणत्तयमाराहं, जीवो आराहओ मुणेयव्वो।

आराहणाविहाणं, तस्स फलं केवलं णाणं।।३४।।

रत्नत्रयकी आराधना करनेवाले जीवको आराधक मानना चाहिए, आराधना करना सो आराधना है और उसका फल केवलज्ञान है।।३४।।

सिद्धो सुद्धो आदा, सव्वण्हू सव्वलोयदरसी य।

सो जिणवरेहिं भणियो, जाण तुमं केवलं णाणं।।३५।।

जिनेंद्र भगवान्‌के द्वारा कहा हुआ वह आत्मा सिद्ध है, शुद्ध है, सर्वज्ञ है, सर्वलोकदर्शी है तथा केवलज्ञानरूप है, ऐसा तुम जानो।।३५।।

रयणत्तयं पि जोई, आराहइ जो हु जिणवरमएण।

सो झायदि अप्पाणं, परिहरदि परं ण संदेहो।।३६।।

जो योगी -- ध्यानस्थ मुनि जिनेंद्रदेवके मतानुसार रत्नत्रयकी आराधना करता है वह आत्माका ध्यान करता है और पर पदार्थका त्याग करता है इसमें संदेह नहीं है।।३६।।

जं जाणइ तं णाणं, जं पिच्छइ तं च दंसणं णेयं।

तं चारित्तं भणियं, परिहारो पुण्णपावाणं।।३७।।

जो जानता है वह ज्ञान है, जो देखता -- सामान्य अवलोकन करता है वह दर्शन है, अथवा जो प्रतीति करता है वह दर्शन है -- सम्यग्दर्शन है और जो पुण्य-पापका परित्याग है वह चारित्र है।।३७।।

तच्चरुई सम्मत्तं, तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं।

चारित्तं परिहारो, पजंपियं जिणवरिंदेहिं।।३८।।

तत्त्वरुचि होना सम्यग्दर्शन है, तत्त्वज्ञान होना सम्यग्ज्ञान है और पापक्रियाका परिहार -- त्याग होना सम्यक्‌चारित्र है, ऐसा जिनेंद्रभगवान्‌ने कहा है।।३८।।

दंसणसुद्धो सुद्धो, दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं।

दंसणविहीणपुरिसो, न लहइ तं इच्छियं लाहं।।३९।।

सम्यग्दर्शनसे शुद्ध मनुष्य शुद्ध कहलाता है। सम्यग्दर्शनसे शुद्ध मनुष्य निर्वाणको प्राप्त होता है। जो मनुष्य सम्यग्दर्शनसे रहित है वह इष्ट लाभको नहीं पाता है।।३९।।

इय उवएसं सारं, जरमरणहरं खु मण्णए जं तु।

तं सम्मत्तं भणियं, समणाणं सावयाणं पि।।४०।।

यह श्रेष्ठतर उपदेश स्पष्ट ही जन्म-मरणको हरनेवाला है, इसे जो मानता है -- इसकी श्रद्धा करता है वह सम्यक्त्व है। यह सम्यक्त्व मुनियोंके, श्रावकोंके तथा चतुर्गतिके जीवोंके होता है।।४०।।

जीवाजीवविहत्ती, जोई जाणेइ जिणवरमएणं।

तं सण्णाणं भणियं, अवियत्थं सव्वदरिसीहिं।।४१।।

जो मुनि जिनेंद्रदेवके मतसे जीव और अजीवके विभागको जानता है उसे सर्वदर्शी भगवान्‌ने सम्यग्ज्ञान कहा है।।४१।।

जं जाणिऊण जोई, परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं।

तं चारित्तं भणियं, अवियप्पं कम्मरहिएण।।४२।।

यह सब जानकर योगी जो पुण्य और पाप दोनोंका परिहार करता है उसे कर्मरहित सर्वज्ञदेवने निर्विकल्पक चारित्र कहा है।।४२।।

जो रयणत्तयजुत्तो, कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।

सो पावइ परमपयं, झायंतो अप्पयं सुद्धं।।४३।।

रत्नत्रयको धारण करनेवाला जो मुनि शुद्ध आत्माका ध्यान करता हुआ अपनी शक्तिसे तप करता है वह परम पदको प्राप्त होता है।।४३।।

तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं, तियरहिओ तह तिएण परियरिओ।

दोदोसविप्पमुक्को, परमप्पा झायए जोई।।४४।।

तीनके द्वारा तीनको धारण कर निरंतर तीनसे रहित, तीनसे सहित और दो दोषोंसे मुक्त रहनेवाला योगी परमात्माका ध्यान करता है।

विशेषार्थ -- तीनके द्वारा अर्थात् मन वचन कायके द्वारा, तीनको अर्थात् वर्षाकालयोग, शीतकालयोग और उष्णकालयोगको धारण कर निरंतर अर्थात् दीक्षाकालसे लेकर सदा तीनसे रहित अर्थात् माया मिथ्यात्व और निदान इन शल्योंसे रहित, तीनसे सहित अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रसे सहित और दोषोंसे विप्रमुक्त अर्थात् राग द्वेष इन दो दोषोंसे सर्वथा रहित योगी -- ध्यानस्थ मुनि परमात्मा अर्थात् सिद्धके समान उत्कृष्ट निज आत्मस्वरूपका ध्यान करता है।।४४।।

मयमायकोहरहिओ, लोहेण विवज्जिओ य जो जीवो।

णिम्मलसहावजुत्तो, सो पावइ उत्तमं सोक्खं।।४५।।

जो जीव मद माया और क्रोधसे रहित है, लोभसे वर्जित है तथा निर्मल स्वभावसे युक्त है वह उत्तम सुखको प्राप्त होता है।।४५।।

विसयकसाएहि जुदो, रुद्दो परमप्पभावरहियमणो।
सो न लहइ सिद्धिसुहं, जिणमुद्दपरम्मुहो जीवो।।४६।।

जो विषय और कषायोंसे युक्त है, जिसका मन परमात्माकी भावनासे रहित है तथा जो जिनमुद्रासे पराङ्मुख -- भ्रष्ट हो चुका है ऐसा रुद्रपदधारी जीव सिद्धिसुखको प्राप्त नहीं होता।।४६।।

जिणमुद्दं सिद्धिसुहं, हवेइ णियमेण जिणवरुद्दिट्ठा।
सिविणे वि ण रुच्चइ पुण, जीवा अच्छंति भवगहणे।।४७।।

जिनेंद्र भगवान्‌के द्वारा कही हुई जिनमुद्रा सिद्धिसुखरूप है। जिन जीवोंको यह जिनमुद्रा स्वप्नमें भी नहीं रुचती वे संसाररूप वनमें रहते हैं अर्थात् कभी मुक्तिको प्राप्त नहीं होते।।४७।।

परमप्पय झायंतो, जोई मुच्चेई मलदलोहेण।
णादियदि णवं कम्मं, णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।।४८।।

परमात्माका ध्यान करनेवाला योगी पापदायक लोभसे मुक्त हो जाता है और नवीन कर्मको नहीं ग्रहण करता ऐसा जिनेंद्र भगवान्‌ने कहा है।।४८।।

होऊण दिढचरित्तो, दिढसम्मत्तेण भावियमईओ।
झायंतो अप्पाणं, परमपयं पावए जोई।।४९।।

योगी -- ध्यानस्थ मुनि दृढ़ चारित्रका धारक तथा दृढ़ सम्यक्त्वसे वासित हृदय होकर आत्माका ध्यान करता हुआ परमपदको प्राप्त होता है।।४९।।

[१]चरणं हवइ सधम्मो, धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो।
सो रागरोसरहिओ, जीवस्स अणण्णपरिणामो।।५०।।

चारित्र आत्माका धर्म है अर्थात् चारित्र आत्माके धर्मको कहते हैं, धर्म आत्माका समभाव है अर्थात् आत्माके समभावको धर्म कहते हैं और समभाव राग द्वेषसे रहित जीवका अभिन्न परिणाम है अर्थात् राग द्वेषसे रहित जीवके अभिन्न परिणामको समभाव कहते हैं।।५०।।

जह फलिहमणि विसुद्धो, परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो ।
तह रागादिविजुत्तो, जीवो हवदि हु अणण्णविहो।।५१।।

जिस प्रकार स्फटिकमणि स्वभावसे विशुद्ध अर्थात् निर्मल है परंतु परद्रव्यसे संयुक्त होकर वह अन्यरूप हो जाता है उसी प्रकार यह जीव भी स्वभावसे विशुद्ध है अर्थात् वीतराग है परंतु रागादि विशिष्ट

१. चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो सम्मो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो।। -- प्रवचनसारे

कारणोंसे युक्त होनेपर स्पष्ट अन्यरूप हो जाता है।

(यहाँ गाथाका एक भाव यह भी समझमें आता है कि जिस प्रकार स्फटिक मणि स्वभावसे विशुद्ध है परतु परपदार्थके संयोगसे वह अन्यरूप हो जाता है उसी प्रकार यह जीव स्वभावसे रागादिवियुक्त है अर्थात् राग द्वेष आदि विकारभावोंसे रहित है परंतु परद्रव्य अर्थात् कर्म नोकर्म पर पदार्थोंके संयोगसे अन्यान्य प्रकार हो जाता है। इस अर्थमें वियुक्त शब्दके प्रचलित अर्थको बदलकर 'विशेषेण युक्तः वियुक्तः अर्थात् सहितः' ऐसी जो क्लिष्ट कल्पना करना पड़ता है उससे बचाव हो जाता है।।५१।।

देवगुरुम्मि य भत्तो, साहम्मि य संजदेसु अणुरत्तो।
सम्मत्तमुव्वहंतो, झाणरओ होइ जोई सो।।५२।।

जो देव और गुरुका भक्त है, सहधर्मी भाई तथा संयमी जीवोंका अनुरागी है तथा सम्यक्त्वको ऊपर उठाकर धारण करता है अर्थात् अत्यंत आदरसे धारण करता है ऐसा योगी ही ध्यानमें तत्पर होता है।।५२।।

[१]उग्गतवेणण्णाणी, जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहि।
तं णाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ अंतो मुहुत्तेण।।५३।।

अज्ञानी जीव उग्र तपश्चरणके द्वारा जिस कर्मको अनेक भवोंमें खिपा पाता है उसे तीन गुप्तियोंसे सुरक्षित रहनेवाला ज्ञानी जीव अंतर्मुहूर्तमें खिपा देता है।।५३।।

ज्ञानी और अज्ञानीका लक्षण

सुभजोगेण सुभावं, परदव्वे कुणइ रागदो साहू।
सो तेण दु अण्णाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो।। ५४।।

जो साधु शुभ पदार्थके संयोगसे रागवश परद्रव्यमें प्रीतिभाव करता है वह अज्ञानी है और इससे जो विपरीत है वह ज्ञानी है।।५४।।

आसवहेदू य तहा, भावं मोक्खस्स कारणं हवदि।
सो तेण दु अण्णाणी, आदसहावस्स विवरीदो।।५५।।

जिस प्रकार इष्ट विषयका राग कर्मास्रवका हेतु है उसी प्रकार मोक्ष विषयका राग भी कर्मास्रवका हेतु है और इसी रागभावके कारण यह जीव अज्ञानी तथा आत्मस्वभावसे विपरीत होता है।।५५।।

जो कम्मजादमइओ, सहावणाणस्स खंडदूसयरो।
सो तेण दु अण्णाणी, जिणसासणदूसगो भणिदो।।५६।।

१. 'कोटिजनम तप तपै ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानीके छिनमाहिं गुप्तितैं सहज टरैं ते।।' -- छहढाला

कर्मजन्य मतिज्ञानको धारण करनेवाला जो जीव स्वभावज्ञान -- केवलज्ञानका खंडन करता है अथवा उसमें दोष लगाता है वह अपने इस कार्यसे अज्ञानी तथा जिनधर्मका दूषक कहा गया है।।५६।।

णाणं चरित्तहीणं, दंसणहीणं तवेहि संजुत्त।
अण्णेसु भावरहियं, लिंगग्गहणेण किं सोक्खं।।५७।।

चारित्ररहित ज्ञान सुख करनेवाला नहीं है, सम्यग्दर्शनसे रहित तपोंसे युक्त कर्म सुख करनेवाला नहीं है, तथा छह आवश्यक आदि अन्य कार्योंमें भी भावरहित प्रवृत्ति सुख करनेवाली नहीं है, फिर मात्र लिंगग्रहण करनेसे क्या सुख मिल जायेगा? ।।५७।।

[इस गाथाका एक भाव यह भी हो सकता है -- हे साधो! तेरा ज्ञान यथार्थ चारित्रसे रहित है, तेरा तपश्चरण सम्यग्दर्शनसे रहित है तथा तेरा अन्य कार्य भी भावसे रहित है अतः तुझे लिंगग्रहणसे -- मात्र वेष धारण करनेसे क्या सुख प्राप्त हो सकता है? अर्थात् नहीं।]।।५७।।

अच्चेयणं पि चेदा, जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी।
सो पुण णाणी भणिओ, जो मण्णइ चेयणे चेदा।।५८।।

जो अचेतनको भी चेतयिता मानता है वह अज्ञानी है और जो चेतनको चेतयिता मानता है वह ज्ञानी है।।५८।।

तवरहियं जं णाणं, णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेण य, संजुत्तो लहइ णिव्वाणं।।५९।।

जो ज्ञान तपसे रहित है वह व्यर्थ है और जो तप ज्ञानसे रहित है वह भी व्यर्थ है, इसलिए ज्ञान और तपसे युक्त पुरुष ही निर्वाणको प्राप्त होता है।।५९।।

धुवसिद्धी तित्थयरो, चउणाणजुदो करेइ तवयरणं।
णाऊण धुवं कुज्जा, तवयरणं णाणजुत्तो वि।।६०।।

जो ध्रुवसिद्धि हैं अर्थात् जिन्हें अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होना है तथा जो चार ज्ञानोंसे सहित हैं ऐसे तीर्थंकर भगवान् भी तपश्चरण करते हैं ऐसा जानकर ज्ञानयुक्त पुरुषको भी तपश्चरण करना चाहिए।।६०।।

बाहिरलिंगेण जुदो, अब्भंतर लिंगरहिदपरियम्मो।
सो सगचरित्तभट्ठो, मोक्खपहविणासगो साहू।।६१।।

जो साधु बाह्यलिंगसे तो सहित है, परंतु जिसके शरीरका संस्कार (प्रवर्तन) आभ्यंतर लिंगसे रहित है वह आत्मचरित्रसे भ्रष्ट है तथा मोक्षमार्गका नाश करनेवाला है।।६१।।

सुहेण भावितं ज्ञानं, दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई, अप्पा दुक्खेहि भावए।।६२।।

सुखसे वासित ज्ञान दुःख उत्पन्न होनेपर नष्ट हो जाता है इसलिए योगीको यथाशक्ति आत्माको दुःखसे वासित करना चाहिए।।६२।।

आहारासणणिद्दजियं च काऊण जिणवरमएण।
झायव्वो णियअप्पा, णाऊण गुरुपसाएण।।६३।।

आहार, आसन और निद्राको जीतकर जिनेंद्र देवके मतानुसार गुरुओंके प्रसादसे निज आत्माको जानना चाहिए और उसीका ध्यान करना चाहिए।।६३।।

अप्पा चरित्तवंतो, दंसणणाणेण संजुदो अप्पा।
सो झायव्वो णिच्चं, णाऊण गुरुपसाएण।।६४।।

आत्मा चारित्रसे सहित है, आत्मा दर्शन और ज्ञानसे युक्त है, इस प्रकार गुरुके प्रसादसे जानकर उसका नित्य ही ध्यान करना चाहिए।।६४।।

दुक्खे णज्जइ अप्पा, अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियसहावपुरिसो, विसएसु विरुच्चए दुक्खं।।६५।।

प्रथम तो आत्मा दुःखसे जाना जाता है, फिर जानकर उसकी भावना दुःखसे होती है, फिर आत्मस्वभावकी भावना करनेवाला पुरुष दुःखसे विषयोंमें विरक्त होता है।।६५।।

ताम ण णज्जइ अप्पा, विसएसु णरो पवट्टए जाम।
विसए विरत्तचित्तो, जोई जाणेइ अप्पाणं।।६६।।

जब तक मनुष्य विषयोंमें प्रवृत्ति करता है तब तक आत्मा नहीं जाना जाता अर्थात् आत्मज्ञान नहीं होता। विषयोंसे विरक्तचित्त योगी ही आत्माको जानता है।।६६।।

अप्पा णाऊण णरा, केई सब्भावभावपब्भट्टा।
हिंडंति चाउरंगं, विसएसु विमोहिया मूढा।।६७।।

आत्माको जानकर भी कितने ही लोग सद्भावकी भावनासे -- निजात्मभावनासे भ्रष्ट होकर विषयोंसे मोहित होते हुए चतुर्गतिरूप संसारमें भटकते रहते हैं।।६७।।

जे पुण विसयविरत्ता, अप्पा णाऊण भावणासहिया।
छंडंति चाउरंगं, तवगुणजुत्ता ण संदेहो।।६८।।

और जो विषयोंसे विरक्त होते हुए आत्माको जानकर उसको भावनासे सहित रहते हैं वे तपरूपी गुण अथवा तप और मूलगुणोंसे युक्त होकर चतुरंग -- चतुर्गतिरूप संसारको छोड़ देते हैं इसमें संदेह नहीं है।।६८।।

परमाणुपमाणं वा, परदव्वे रदि हवेदि मोहादो।
सो मूढो अण्णाणी, आदसहावस्स विवरीदो।।६९।।

जिसकी अज्ञानवश परद्रव्यमें परमाणुप्रमाण भी रति है वह मूढ़ है, अज्ञानी है और आत्मस्वभावसे विपरीत है।।६९।।

अप्पा झायंताणं, दंसणसुद्धीण दिढचरित्ताणं।
होदि धुवं णिव्वाणं, विसएसु विरत्तचित्ताणं।।७०।।

जो आत्माका ध्यान करते हैं, जिनके सम्यग्दर्शनकी शुद्धि विद्यमान है, जो दृढ़ चारित्रके धारक हैं तथा जिनका चित्त विषयोंसे विरक्त है ऐसे पुरुषोंको निश्चित ही निर्वाण प्राप्त होता है।।७०।।

जेण रागे परे दव्वे, संसारस्स हि कारणं।
तेणावि जोइणो णिच्च, कुज्जा अप्पे सभावणा।।७१।।

जिस स्त्री आदि पर्यायसे परद्रव्यमें राग होनेपर वह राग संसारका कारण होता है योगी उसी पर्यायसे निरंतर आत्मामें आत्मभावना करता है।।७१।।

भावार्थ -- साधारण मनुष्य स्त्रीको देखकर उसमें राग करता है जिससे उसके संसारकी वृद्धि होती है, परंतु योगी -- ज्ञानी मनुष्य स्त्रीको देखकर विचार करता है कि जिस प्रकार मेरा आत्मा अनंत केवलज्ञानमय है उसी प्रकार इस स्त्रीका आत्मा भी अनंत केवलज्ञानमय है। यह स्त्री और मैं -- दोनोंही केवलज्ञानमय हैं। इस कारण यह स्त्री भी मेरी आत्मा है, मुझसे पृथक् इसमें है ही क्या? जिससे स्नेह करूँ।

(पं. जयचंद्रजीने अपनी वचनिकामें 'जेण रागो परे दव्वे' ऐसा पाठ स्वीकृत कर यह अर्थ प्रकट किया है -- चूँकि परद्रव्यसंबंधी राग संसारका कारण है इसलिए रोगीको निरंतर आत्मामें ही भावना करनी चाहिए। परंतु इस अर्थमें 'तेणावि -- तेनापि' यहाँ तेन शब्दके साथ दिये हुए अपि शब्दकी निरर्थकता सिद्ध होती है।)

णिंदाए य पसंसाए, दुक्खे य सुहएसु च।
सत्तूणं चेव बंधूणं, चारित्तं समभावदो।।७२।।

निंदा और प्रशंसा, दुःख और सुख तथा शत्रु और मित्रमें समभावसे ही चारित्र होता है।।७२।।

यह ध्यानके योग्य समय नहीं है इस मान्यताका निराकरण करते हैं --

चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभावपब्भट्टा।
केई जंपंति णरा, ण हु कालो झाणजोयस्स।।७३।।

जो चारित्रको आवरण करनेवाले चारित्रमोहनीय कर्मसे युक्त हैं, व्रत और समितिसे रहित हैं तथा शुद्ध भावसे च्युत हैं ऐसे कितने ही मनुष्य कहते हैं कि यह ध्यानरूप योगका समय नहीं है अर्थात् इस समय

ध्यान नहीं हो सकता है।।७३।।

सम्मत्तणाणरहिओ, अभव्वजीवो हु मोक्खपरिमुक्को।
संसारसुहे सुरदो, ण हु कालो भणइ झाणस्स।।७४।।

जो सम्यक्त्व तथा सम्यग्ज्ञानसे रहित है, जिसे कभी मोक्ष नहीं होता है तथा जो संसारसंबंधी सुखमें अत्यंत रत है ऐसा अभव्य जीव ही कहता है कि यह ध्यानका काल नहीं है, अर्थात् इस समय ध्यान नहीं हो सकता।।७४।।

पंचसु महव्वदेसु य, पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
जो मूढो अण्णाणी, ण हु कालो भणइ झाणस्स।।७५।।

जो पाँच महाव्रतों, पाँच समितियों तथा तीन गुप्तियोंके विषयमें मूढ़ है और अज्ञानी है वही कहता है कि यह ज्ञानका काल नहीं है, अर्थात् इस समय ध्यान नहीं हो सकता।।७५।।

भरहे दुःसमकाले, धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे, ण हु मण्णइ सो हु अण्णाणी।।७६।।

भरत क्षेत्रमें दुःषम नामक पंचम कालमें मुनिके धर्म्यध्यान होता है तथा वह धर्म्यध्यान आत्मस्वभावमें स्थित साधुके होता है ऐसा जो नहीं मानता वह अज्ञानी है।।७६।।

अज्ज वि तिरयणसुद्धा, अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं, तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।७७।।

आज भी रत्नत्रयसे शुद्धताको प्राप्त हुए मनुष्य आत्माका ध्यान कर इंद्रपद तथा लौकांतिक देवोंके पदको प्राप्त होते हैं और वहाँसे च्युत होकर निर्वाणको प्राप्त होते हैं।।७७।।

जे पावमोहियमई, लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा, ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।।७८।।

जो पापसे मोहितबुद्धि मनुष्य जिनेंद्रदेवका लिंग धारण कर पाप करते हैं वे पापी मोक्षमार्गसे पतित हैं।।७८।।

जे पंचचेलसत्ता, गंथग्गाहीय जायणासीला।
आधाकम्मम्मि रया, ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।।७९।।

जो पाँच[१] प्रकारके वस्त्रोंमें आसक्त हैं, परिग्रहको ग्रहण करनेवाले हैं, याचना करते हैं तथा अधःकर्म -- निंद्य कर्ममें रत हैं वे मुनि मोक्षमार्गसे पतित हैं।।

१. १. अंडज -- कोशा आदि। २. बुंडज -- सूती वस्त्र। ३. वल्कज -- सन तथा जूट आदिसे निर्मित। ४. चर्मज -- चमड़ेसे उत्पन्न और ५. रोमज -- ऊनी वस्त्र। ये पाँच प्रकारके वस्त्र हैं।

णिग्गंथमोहमुक्का, बावीसपरीसहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का, ते गहिया मोक्खमग्गम्मि।।८०।।

जो परिग्रहसे रहित हैं, पुत्र-मित्र आदिके मोहसे मुक्त हैं, बाईस परीषहोंको सहन करनेवाले हैं, कषायोंको जीतनेवाले हैं तथा पाप और आरंभसे दूर हैं वे मोक्षमार्गमें अंगीकृत हैं।।८०।।

उद्धद्धमज्झलोए, केई मज्झं ण अइयमेगागी।
इयभावणाए जोई, पावंति हु सासयं मोक्खं।।८१।।

ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोकमें कोई जीव मेरे नहीं हैं, मैं अकेला ही हूँ इस प्रकारकी भावनासे योगी शाश्वत -- अविनाशी सुखको प्राप्त होते हैं।।८१।।

देवगुरूणं भत्ता, णिव्वेयपरंपरा विचिंतंता।
झाणरया सुचरित्ता, ते गहिया मोक्खमग्गम्मि।।८२।।

जो देव और गुरुके भक्त हैं, वैराग्यकी परंपराका विचार करते रहते हैं, ध्यानमें तत्पर रहते हैं तथा शोभन -- निर्दोष आचारका पालन करते हैं वे मोक्षमार्गमें अंगीकृत हैं।।८२।।

णिच्छयणयस्स एवं, अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो, जोई सो लहइ णिव्वाणं।।८३।।

निश्चय नयका ऐसा अभिप्राय है कि जो आत्मा आत्माके लिए, आत्मामें तन्मयीभावको प्राप्त है वही सुचारित्र -- उत्तम चारित्र है। इस चारित्रको धारण करनेवाला योगी निर्वाणको प्राप्त होता है।।८३।।

पुरिसायारो अप्पा, जोई वरणाणदंसणसमग्गो।
जो झायदि सो जोई, पावहरो भवदि णिद्दंदो।।८४।।

पुरुषाकार अर्थात् मनुष्यशरीरमें स्थित जो आत्मा योगी बनकर उत्कृष्ट ज्ञान और दर्शनसे पूर्ण होता हुआ आत्माका ध्यान करता है वह पापोंको हरनेवाला तथा निर्द्वंद्व होता है।।८४।।

एवं जिणेहिं कहियं, सवणाणं सावयाण पुण पुणसु।
संसारविणासयरं, सिद्धियरं कारणं परमं।।८५।।

इस प्रकार जिनेंद्र भगवान्‌के द्वारा बार-बार कहे हुए वचन मुनियों तथा श्रावकोंके संसारको नष्ट करनेवाले तथा सिद्धिको प्राप्त करानेवाले उत्कृष्ट कारणस्वरूप हैं।।८५।।

गहिऊण य सम्मत्तं, सुनिम्मलं सुरगिरीव निक्कंपं।
तं झाणे झाइज्जइ, सावय दुक्खक्खयट्ठाए।।८६।।

हे श्रावक! (हे सम्यग्दृष्टि उपासक अथवा हे मुने!) अत्यंत निर्मल और मेरुपर्वतके समान

निश्चल सम्यग्दर्शनको ग्रहण कर दुःखोंका क्षय करनेके लिए ध्यानमें उसीका ध्यान किया जाता है।।८६।।

सम्मत्तं जो झायदि, सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो।
सम्मत्तपरिणदो उण, खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि।।८७।।

जो जीव सम्यक्त्वका ध्यान करता है वह सम्यग्दृष्टि हो जाता है और सम्यक्त्वरूप परिणत हुआ जीव दुष्ट आठ कर्मोंका क्षय करता है।।८७।।

किं बहुणा भणिएणं, जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया, तं जाणह सम्ममाहप्पं।।८८।।

अधिक कहनेसे क्या? अतीत कालमें जितने श्रेष्ठ पुरुष सिद्ध हुए हैं और भविष्यत् कालमें जितने सिद्ध होंगे उस सबको तुम सम्यग्दर्शनका ही माहात्म्य जानो।।८८।।

ते धण्णा सुकयत्था, ते सूरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं, सिवणे वि य मइलियं जेहिं।।८९।।

वे ही मनुष्य धन्य हैं, वे ही कृतकृत्य हैं, वे ही शूरवीर हैं और वे ही पंडित हैं जिन्होंने सिद्धिको प्राप्त करानेवाले सम्यक्त्वको स्वप्नमें भी मलिन नहीं किया।।८९।।

हिंसारहिए धम्मे, अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पावयणे, सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।९०।।

हिंसारहित धर्म, अठारह दोषरहित देव, निर्ग्रंथ गुरु और अर्हत्प्रवचन -- समीचीन शास्त्रमें जो श्रद्धा है वह सम्यग्दर्शन है।।९०।।

जहजायरूवरूवं, सुसंजयं सव्वसंगपरिचत्तं।
लिंगं ण परोवेक्खं, जो मण्णइ तस्स सम्मत्तं।।९१।।

दिगंबर मुनिका लिंग (वेष) यथाजात -- तत्काल उत्पन्न हुए बालकके समान होता है, उत्तम संयमसे सहित होता है, सब परिग्रहसे रहित होता है और परकी अपेक्षासे रहित होता है, ऐसा जो मानता है उसके सम्यक्त्व होता है।।९१।।

कुच्छियदेवं धम्मं, कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो, मिच्छादिट्ठी हवे सो हु।।९२।।

जो लज्जा, भय, गारवसे कुत्सित देव, कुत्सित धर्म और कुत्सित लिंगकी वंदना करता है वह मिथ्यादृष्टि होता है।।९२।।

सपरावेक्खं लिंगं, राई देवं असंजयं वंदे।
माणइ मिच्छादिट्ठी, ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्तो।।९३।।

परकी अपेक्षासे सहित लिंगको तथा रागी और असंयत देवको वंदना करता हूँ ऐसा मिथ्यादृष्टि मानता है, शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव नहीं।।९३।।

सम्माइट्ठी सावय, धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।
विवरीयं कुव्वंतो, मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।।९४।।

सम्यग्दृष्टि श्रावक अथवा मुनि जिनदेवके द्वारा उपदेशित धर्मको करता है। जो विपरीत धर्मको करता है उसे मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए।।९४।।

मिच्छादिट्ठी जो सो, संसारे संसरेइ सुहरहिओ।
जम्मजरमरणपउरे, दुक्खसहस्साउले जीवो।।९५।।

जो मिथ्यादृष्टि जीव है वह जन्म जरा और मरणसे युक्त तथा हजारों दुःखोंसे परिपूर्ण संसारमें दुःखी होता हुआ भ्रमण करता है।।९५।।

सम्मगुण मिच्छदोसो, मणेण परिभाविऊण तं कुणसु।
जं ते मणस्स रुच्चइ, किं बहुणा पलविएणं तु।।९६।।

सम्यक्त्व गुण है और मिथ्यात्व दोष है ऐसा मनसे विचार करके तेरे मनके लिए जो रुचे वह कर, अधिक कहनेसे क्या लाभ है?।।९६।।

बाहिरसंगविमुक्को, ण वि मुक्को मिच्छभाव णिग्गंथो।
किं तस्स ठाणमउणं, ण वि जाणदि अप्पसमभावं।।९७।।

जो साधु बाह्य परिग्रहसे तो छूट गया है परंतु मिथ्यात्वभावसे नहीं छूटा है उसका कायोत्सर्गके लिए खड़ा होना अथवा मौनसे रहना क्या है? अर्थात् कुछ भी नहीं है, क्योंकि वह आत्माके समभावको तो जानता ही नहीं है।।९७।।

मूलगुणं छित्तूण य, बाहिरकम्मं करेइ जो साहू।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं, जिणलिंगविराधगो णिच्चं।।९८।।

जो साधु मूलगुणोंको छेद कर बाह्य कर्म करता है वह सिद्धिके सुखको नहीं पाता। वह तो निरंतर जिनलिंगकी विराधना करनेवाला माना गया है।।९८।।

किं काहिदि बहिकम्मं, किं काहिदि बहुविहं च खवणं च।
किं काहिदि आदावं, आदसहावस्स विवरीदो।।९९।।

जो साधु आत्मस्वभावसे विपरीत है, मात्र बाह्य कर्म उसका क्या कर देगा? और आतापनयोग क्या कर देगा? अर्थात् कुछ नहीं।।९९।।

जदि पढदि बहुसुदाणि य, जदि काहिदि बहुविहे य चारित्ते।
तं बालसुदं चरणं, हवेइ अप्पस्स विवरीदं।।१००।।

यदि ऐसा मुनि अनेक शास्त्रोंको पढ़ता है तथा नाना प्रकारके चारित्रोंका पालन करता है तो उसकी वह सब प्रवृत्ति आत्मस्वरूपसे विपरीत होनेके कारण बालश्रुत और बाल चारित्र कहलाती है।।१००।।

वेरग्गपरो साहू, परदव्वपरम्मुहो य सो होदि।
संसारसुहविरत्तो, सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो।।१०१।।

जो साधु वैराग्यमें तत्पर होता है वह परद्रव्यसे पराङ्मुख रहता है, इसी प्रकार जो साधु संसारसुखसे विरक्त रहता है वह स्वकीय शुद्ध सुखमें अनुरक्त होता है।।१०१।।

गुणगणविहूसियंगो, हेयोपादेयणिच्छिदो साहू।
झाणज्झयणे सुरदो, सो पावइ उत्तमं ठाणं।।१०२।।

गुणोंके समूहसे जिसका शरीर शोभित है, जो हेय और उपादेय पदार्थोंका निश्चय कर चुका है तथा ध्यान और अध्ययनमें जो अच्छी तरह लीन रहता है वही साधु उत्तम स्थानको प्राप्त होता है।।१०१।।

णविएहिं जं णविज्जइ, झाइज्जइ झाइएहि अणवरयं।
थुव्वंतेहि थुणिज्जइ, देहत्थं किं पि तं मुणह।।१०३।।

दूसरोंके द्वारा नमस्कृत इंद्रादि देव जिसे नमस्कार करते हैं, दूसरोंके द्वारा ध्यान किये गये तीर्थंकर देव जिसका निरंतर ध्यान करते हैं और दूसरोंके द्वारा स्तूयमान -- स्तुत किये गये तीर्थंकर भी जिसकी स्तुति करते हैं, शरीरके मध्यमें स्थित उस अनिर्वचनीय आत्मतत्त्वको तुम जानो।।१०३।।

अरुहा सिद्धायरिया, उज्झाया साहु परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आदे, तम्हा आदा हु मे सरणं।।१०४।।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच परमेष्ठी हैं। ये पाँचों परमेष्ठी भी जिस कारण आत्मामें स्थित हैं उस कारण आत्मा ही मेरे लिए शरण हो।।१०४।।

सम्मत्तं सण्णाणं, सच्चारित्तं हि सत्तवं चेव।
चउरो चिट्ठहि आदे, तम्हा आदा हु मे सरणं।।१०५।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप ये चारों आत्मामें स्थित हैं, इसलिए आत्मा ही मेरे लिए शरण है।।१०५।।

एवं जिणपण्णत्तं, मोक्खस्स य पाहुडं सुभत्तीए।
जो पढइ सुणइ भावइ, सो पावइ सासयं सोक्खं।।१०६।।

इस प्रकार जिनेंद्र भगवान्‌के द्वारा प्रणीत इस मोक्षप्राभृतको जो उत्तम भक्तिसे पढ़ता है, सुनता है और इसकी भावना करता है वह शाश्वत सुख -- अविनाशी मोक्षसुखको प्राप्त होता है।।१०६।।

इस प्रकार कुंदकुंदाचार्य विरचित मोक्षप्राभृत समाप्त हुआ।

*

लिंगप्राभृतम्

काऊण णमोकारं, अरहंताणं तहेव सिद्धाणं
वोच्छामि समणलिंगं, पाहुडसत्थं समासेण।।१।।

मैं अरहंतों तथा सिद्धोंको नमस्कार कर संक्षेपसे मुनिलिंगका वर्णन करनेवाले प्राभृत शास्त्रको कहूँगा।।१।।

धम्मेण होइ लिंगं, ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भावधम्मं, किं ते लिंगेण कायव्वो।।२।।

धर्मसे लिंग होता है, लिंगमात्र धारण करनेसे धर्मकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिए भावको धर्म जानो, भावरहित लिंगसे तुझे क्या कार्य है?

भावार्थ -- लिंग अर्थात् शरीरका वेष धर्मसे होता है। जिसने भावके बिना मात्र शरीरका वेष धारण किया है उसके धर्मकी प्राप्ति नहीं होती, इसलिए भाव ही धर्म है। भावके बिना मात्र वेष कार्यकारी नहीं है।।२।।

जो पावमोहिदमदी, लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
उवहसइ लिंगि भावं, लिंगं णासेदि लिंगीणं।।३।।

जिसकी बुद्धि पापसे मोहित हो रही है ऐसा जो पुरुष जिनेंद्रदेवके लिंगको -- नग्न दिगंबर वेषको ग्रहण कर लिंगीके यथार्थ भावकी हँसी करता है वह सच्चे वेषधारियोंके वेषको नष्ट करता है अर्थात् लजाता है।।३।।

णच्चदि गायदि तावं, वायं वाएदि लिंगरूवेण।
सो पावमोहिदमदी, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।४।।

जो मुणी लिंग धारण कर नाचता है, गाता है अथवा बाजा बजाता है वह पापसे मोहितबुद्धि पशु है,

मुनि नहीं।।४।।

सम्मूहदि रक्खेदि य, अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण।
सो पावमोहिदमदी, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।५।।

जो बहुत प्रकारके प्रयत्नोंसे परिग्रहको इकट्ठा करता है, उसकी रक्षा करता है तथा आर्तध्यान करता है वह पापसे मोहितबुद्धि पशु है, मुनि नहीं।।५।।

कलहं वादं जूवा, णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिंगी।
वच्चदि णरयं पावो, करमाणो लिंगिरूवेण।।६।।

जो पुरुष मुनिलिंगका धारक होकर भी निरंतर अत्यधिक गर्वसे युक्त होता हुआ कलह करता है, वादविवाद करता है अथवा जुवा खेलता है वह चूँकि मुनिलिंगसे ऐसे कुकृत्य करता है अतः पापी है और नरक जाता है।।६।।

पावोपहदिभावो, सेवदि य अबंभु लिंगिरूवेण।
सो पावमोहिदमदी, हिंडदि संसारकांतारे।।७।।

पापसे जिसका यथार्थभाव नष्ट हो गया है ऐसा जो साधु मुनिलिंग धारण कर अब्रह्मका सेवन करता है वह पापसे मोहितबुद्धि होता हुआ संसाररूपी अटवीमें भ्रमण करता रहता है।।७।।

दंसणणाणचरित्ते, उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण।
अट्टं झायदि झाणं, अणंतसंसारिओ होदी।।८।।

जो मुनिलिंग धारण कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको उपधान अर्थात् आश्रय नहीं बनाता है तथा आर्तध्यान करता है वह अनंतसंसारी होता है।।८।।

जो जोडदि विव्वाहं, किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।
वच्चदि णरयं पावो, करमाणो लिंगिरूवेण।।९।।

जो मुनिका लिंग रखकर भी दूसरोंके विवाहसंबंध जोड़ता है तथा खेती और व्यापारके द्वारा जीवोंका घात करता है वह चूँकि मुनिलिंगके द्वारा इस कुकृत्यको करता है अतः पापी है और नरक जाता है।।९।।

चोराण मिच्छवाण य, जुद्ध विवादं च तिव्वकम्मेहिं।
जंतेण दिव्वमाणो, गच्छदि लिंगी णरयवासं।।१०।।

जो लिंगी चोरों तथा झूठ बोलनेवालोंके युद्ध और विवादको कराता है तथा तीव्रकर्म -- खरकर्म अर्थात् हिंसावाले कार्योंसे यंत्र अर्थात् चौपड़ आदिसे क्रीड़ा करता है वह नरकवासको प्राप्त होता है।।१०।।

दंसणणाणचरित्ते, तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि।

पीडयदि वट्टमाणो, पावदि लिंगी णरयवासं।।११।।

जो मुनिवेषी दर्शन, ज्ञान, चारित्र तप तथा तप संयम नियम और नित्य कार्योंमें प्रवृत्त होता हुआ दूसरे जीवोंको पीड़ा पहुँचाता है वह नरकवासको प्राप्त होता है।।११।।

कंदप्पाइय वट्टइ, करमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं।

माई लिंगविवाई, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।१२।।

जो पुरुष मुनिवेषी होकर भी कांदर्पी आदि कुत्सित भावनाओंको करता है तथा भोजनमें रससंबंधी लोलुपताको धारण करता है वह मायाचारी मुनिलिंगको नष्ट करनेवाला पशु है, मुनि नहीं।।१२।।

धावदि पिंडणिमित्तं, कलहं काऊण भुंजदे पिंडं।

अवरुपरूई संतो, जिणमग्गि ण होइ सो समणो।।१३।।

जो आहारके निमित्त दौड़ता है, कलह कर भोजनको ग्रहण करता है और उसके निमित्त दूसरेसे ईर्ष्या करता है वह जिनमार्गी श्रमण नहीं है।।१३।।

भावार्थ -- इस कालमें कितने ही लोग जिनलिंगमें भ्रष्ट होकर अर्धपालक हुए फिर उनमें श्वेतांबरादिक हुए। उन्होंने शिथिलाचारका पोषण कर लिंगकी प्रवृत्ति विकृत कर दी। उन्हींका यहाँ निषेध समझना चाहिए। उनमें अब भी कोई ऐसे साधु हैं जो आहारके निमित्त शीघ्र दौड़ते हैं -- ईर्यासमितिको भूल जाते हैं और गृहस्थके घरसे लाकर दो-चार संमिलित बैठकर खाते हैं और बँटवारामें सरस-नीरस आनेपर परस्पर कलह करते हैं तथा इस निमित्तको लेकर दूसरोंसे ईर्ष्या भी करते हैं। सो ऐसे साधु जिनमार्गी नहीं हैं।।१३।।

गिण्हदि अदत्तदाणं, परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।

जिणलिंगं धारंतो, चोरेण व होइ सो समणो।।१४।।

जो मनुष्य जिनलिंगको धारण करता हुआ भी बिना दी हुई वस्तुको ग्रहण करता है तथा परोक्षमें दूषण लगा-लगाकर दूसरेकी निंदा करता है वह चोरके समान है, साधु नहीं है।।१४।।

उप्पडदि पडदि धावदि, पुढवीओ खणदि लिंगरूवेण।

इरियावह धावंतो, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।१५।।

जो मुनिलिंग धारण कर चलते समय कभी उछलता है, कभी दौड़ता है और कभी पृथिवीको खोदता है वह पशु है, मुनि नहीं।।१५।।

बंधे णिरओ संतो, सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि।

छिंददि तरुगण बहुसो, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। १६।।

जो किसीके बंधमें लीन होकर अर्थात् उसका आज्ञाकारी बनकर धान कूटता है, पृथिवी खोदता है और वृक्षोंके समूहको छेदता है वह पशु है, मुनि नहीं।।

भावार्थ -- यह कथन साधुओंकी अपेक्षा है। जो साधु वनमें रहकर स्वयं धान तोड़ते हैं, उसे कूटते हैं, अपने आश्रममें वृक्ष लगाने आदिके उद्देश्यसे पृथिवी खोदते हैं तथा वृक्ष लता आदिको छेदते हैं वे पशुके तुल्य हैं, उन्हें हिंसा पापकी चिंता नहीं, ऐसा मनुष्य साधु नहीं कहला सकता।।१६।।

रागो (रागं) करेदि णिच्चं, महिलावग्गं परं च दूसेदि।
दंसणणाणविहीणो, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। १७।।

जो स्त्रियोंके समूहके प्रति निरंतर राग करता है, दूसरे निर्दोष प्राणियोंको दोष लगाता है तथा स्वयं दर्शन-ज्ञानसे रहित है वह पशु है, साधु नहीं।।१७।।

पव्वज्जहीणगहिणं, णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।
आयारविणयहीणो, तिरिक्खजोणी ण सो सवणो।।१८।।

जो दीक्षासे रहित गृहस्थ शिष्यपर अधिक स्नेह रखता है तथा आचार और विनयसे रहित है वह तिर्यंच है, साधु नहीं।।१८।।

भावार्थ -- कोई-कोई साधु अपने गृहस्थ शिष्यपर अधिक स्नेह रखते हैं, अपने पदका ध्यान न कर उसके घर जाते हैं, सुख-दुःखमें आत्मीयता दिखाते हैं तथा स्वयं मुनिके योग्य आचार तथा पूज्य पुरुषोंकी विनयसे रहित होते हैं। आचार्य कहते हैं कि वे मुनि नहीं है, किंतु पशु हैं।।१८।।

एवं सहिओ मुणिवर, संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।
बहुलं पि जाणमाणो, भावविणट्ठो ण सो सवणो।।

हे मुनिवर! ऐसी खोटी प्रवृत्तियोंसे सहित मुनि यद्यपि संयमी जनोंके बीचमें रहता है और बहुत ज्ञानवान् भी है तो भी वह भावसे विनष्ट है अर्थात् भावलिंगसे रहित है -- यथार्थ मुनि नहीं है।।१९।।

दंसणणाणचरित्ते, महिलावग्गम्मि देदि वोपट्टो।
पासत्थ वि हु णियट्ठो, भावविणट्ठो ण सो समणो।।२०।।

जो स्त्रियोंमें विश्वास उपजाकर उन्हे दर्शन ज्ञान और चारित्र देता है वह पार्श्वस्थ मुनिसे भी निकृष्ट है तथा भावलिंगसे शून्य है, वह परमार्थ मुनि नहीं है।

भावार्थ -- जो मुनि अपने पद का ध्यान न कर स्त्रियोंसे संपर्क बढ़ाता है, उन्हें पासमें बैठाकर पढ़ाता है तथा दर्शन चारित्र आदिका उपदेश देता है वह पार्श्वस्थ नामक भ्रष्ट मुनिसे भी अधिक निकृष्ट है। जब मुनि एकांतमें आर्यिकाओंसे भी बात नहीं करते। सात हाथ की दूरीपर दो या दोसे अधिक संख्यामें बैठी हुई आर्यिकाओंसे ही धर्मचर्चा करते हैं, उनके प्रश्नोंका समाधान करते हैं, तब गृहस्थस्त्रियोंको एकदम

पासमें बैठाकर उनसे संपर्क बढ़ाना मुनिपदके अनुकूल नहीं है। ऐसा मुनि भावलिंगसे शून्य है अर्थात् द्रव्यलिंगी है, परमार्थमुनि नहीं है।।२०।।

पुंश्चलिघरि जसु भुंजइ, णिच्चं संथुणदि पोसए पिंडं।
पावदि बालसहावं, भावविणट्ठो ण सो सवणो।।२१।।

जो साधु व्यभिचारिणी स्त्रीके घर आहार लेता है, निरंतर उसकी स्तुति करता है तथा पिंडको पालता है अर्थात् उसकी स्तुति कर निरंतर आहार प्राप्त करता है वह बालस्वभावको प्राप्त होता है तथा भावसे विनष्ट है, वह मुनि नहीं है।।२१।।

इय लिंगपाहुडमिणं, सव्वं बुद्धेहि देसियं धम्मं।
पालेहि कट्ठसहियं, सो गाहदि उत्तमं ठाणं।।२२।।

इस प्रकार यह लिंगप्राभृत नामका समस्त शास्त्र ज्ञानी गणधरादिके द्वारा उपदिष्ट है। इसे जानकर जो कष्टसहित धर्मका पालन करता है अर्थात् कष्ट भोगकर भी धर्मकी रक्षा करता है वह उत्तम स्थानको प्राप्त होता है।।२२।।

इस प्रकार कुंदकुंदाचार्य विरचित लिंगप्राभृत समाप्त हुआ।

*

शीलप्राभृतम्

वीरं विसालणयणं, रत्तुप्पलकोमलस्समप्पायं।
तिविहेण पणमिऊणं, सीलगुणाणं णिसामेह।।१।।

(बाह्यमें) जिनके विशाल नेत्र हैं तथा जिनके पाँव लाल कमलके समान कोमल हैं (अंतरंग पक्षमें) जो केवलज्ञानरूपी विशाल नेत्रोंके धारक हैं तथा जिनका कोमल एवं राग द्वेषसे रहित वाणीका समूह रागको दूर करनेवाला है उन महावीर भगवान्को मन वचन कायसे प्रणाम कर शीलके गुणोंको अथवा शील और गुणोंका कथन करता हूँ।।१।।

सीलस्स य णाणस्स य, णत्थि विरोहो बुधेहि णिद्दिट्ठो।
णवरि य सीलेण विणा, विसया णाणं विणासंति।।२।।

विद्वानोंने शीलका और ज्ञानका विरोध नहीं कहा है, किंतु यह कहा है कि शीलके विना विषय ज्ञानको नष्ट कर देते हैं।।

भावार्थ -- शील और ज्ञानका विरोध नहीं है, किंतु सहभाव है। जहाँ शील होता है वहाँ ज्ञान अवश्य होता है और शील न हो तो पचेंद्रियोंके विषय ज्ञानको नष्ट कर देते हैं।।२।।

दुक्खेणज्जहि णाणं, णाणं णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियमई व जीवो, विसएसु विरज्जए दुक्खं।।३।।

प्रथम तो ज्ञान ही दुःख से जाना जाता है, फिर यदि कोई ज्ञानको जानता भी है तो उसकी भावना दुःखसे होती है, फिर कोई जीव उसकी भावना भी करता है तो विषयोंमें विरक्त दुःखसे होता है।।३।।

ताव ण जाणदि णाणं, विसयबलो जाव वट्टए जीवो।
विसए विरत्तमेत्तो, ण खवेइ पुराइयं कम्मं।।४।।

जबतक जीव विषयोंके वशीभूत रहता है तबतक ज्ञानको नहीं जानता और ज्ञानके बिना मात्र विषयोंसे विरक्त हुआ जीव पुराने बँधे हुए कर्मोंका क्षय नहीं करता।।४।।

णाणं चरित्तहीणं, लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं।
संजमहीणो य तवो, जइ चरइ णिरत्थयं सव्वं।।५।।

यदि कोई साधु चारित्ररहित ज्ञानका, सम्यग्दर्शनरहित लिंगका और संयमरहित तपका आचरण करता है तो उसका यह सब आचरण निरर्थक है।

भावार्थ -- हेय और उपादेयका ज्ञान तो हुआ परंतु तदनुरूप चारित्र न हुआ तो वह ज्ञान किस कामका? मुनिलिंग तो धारण किया, परंतु सम्यग्दर्शन न हुआ तो वह मुनिलिंग किस कामका? इसी तरह तप भी किया परंतु जीवरक्षा अथवा इंद्रियवशीकरणरूप संयम नहीं हुआ तो वह तप किस कामका? इस सबका उद्देश्य कर्मक्षय करके मोक्ष प्राप्त करना है परंतु उसकी सिद्धि न होनेसे सबका निरर्थकपना दिखाया है।।५।।

णाणं चरित्तसुद्धं, लिंगग्गहणं च दंसणविसुद्धं।
संजमसहिदो य तवो, थोवो वि महाफलो होइ।।६।।

चारित्रसे शुद्ध ज्ञान, दर्शनसे शुद्ध लिंगधारण और संयमसे सहित तप थोड़ा भी हो तो भी वह महाफलसे युक्त होता है।।६।।

णाणं णाऊण णरा, केई विसयाइभावसंसत्ता।
हिंडंति चादुरगदिं, विसएसु विमोहिया मूढा।।७।।

जो कोई मनुष्य ज्ञानको जानकर भी विषयादिक भावमें आसक्त रहते हैं वे विषयोंमें मोहित रहनेवाले मूर्ख प्राणी चतुर्गतिरूप संसारमें भ्रमण करते रहते हैं।।७।।

जे पुण विसयविरत्ता, णाणं णाऊण भावणासहिदा ।
छिंदंति चादुरगदिं, तवगुणजुत्ता ण संदेहो।।८।।

किंतु जो ज्ञानको जानकर उसकी भावना करते हैं अर्थात् पदार्थके स्वरूपको जानकर उसका चिंतन करते हैं और विषयोंसे विरक्त होते हुए तपश्चरण तथा मूलगुण और उत्तरगुणोंसे युक्त होते हैं वे चतुर्गतिरूप संसारको छेदते हैं -- नष्ट करते हैं इसमें संदेह नहीं है।।८।।

जह कंचणं विसुद्धं, धम्मइयं खंडियलवणलेवेण।
तह जीवो वि विसुद्धं, णाण विसलिलेण विमलेण।।९।।

जिस प्रकार सुहागा और नमकके लेपसे युक्त कर फूँका हुआ सुवर्ण विशुद्ध हो जाता है उसी प्रकार ज्ञानरूपी निर्मल जलसे यह जीव भी विशुद्ध हो जाता है।।९।।

णाणस्स णत्थि दोसो, कापुरिसाणो वि मंदबुद्धीणो।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंते।।१०।।

जो पुरुष ज्ञानके गर्वसे युक्त हो विषयोंमें राग करते हैं वह उनके ज्ञानका अपराध नहीं है, किंतु मंदबुद्धिसे युक्त उन कापुरुषोंका ही अपराध है।।१०।।

णाणेण दंसणेण य, तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं, जीवाणं चरितसुद्धाणं।।११।।

निर्दोष चारित्र पालन करनेवाले जीवोंको सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् तप और सम्यक्चारित्रसे निर्वाण प्राप्त होता है।।

भावार्थ -- जैनागममें सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्तप और सम्यक्चारित्र इन चार आराधनाओंसे मोक्षप्राप्ति होती है ऐसा कहा गया है, परंतु ये चारों आराधनाएँ उन्हीं जीवोंके मोक्षका कारण होती हैं जो चारित्रसे शुद्ध होते हैं अर्थात् प्रमाद छोड़कर निर्दोष चारित्रका पालन करते हैं।।११।।

सीलं रक्खंताणं, दंसणसुद्धाण दिढचरित्ताणं।
अत्थि धुवं णिव्वाणं, विसएसु विरत्तचित्ताणं।।१२।।

जो शीलकी रक्षा करते हैं, जो शुद्ध दर्शन -- निर्दोष सम्यक्त्वसे सहित हैं, जिनका चारित्र दृढ़ है और जो विषयोंसे विरक्तचित्त रहते हैं उन्हें निश्चित ही निर्वाणकी प्राप्ति होती है।।१२।।

विसएसु मोहिदाणं, कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।
उम्मग्गं दरिसीणं, णाणं पि णिरत्थयं तेसिं।।१३।।

जो मनुष्य इष्ट -- लक्ष्यको देख रहे हैं वे वर्तमानमें भले ही विषयोंमें मोहित हों, तो भी उन्हें मार्ग

प्राप्त हो गया है ऐसा कहा गया है, परंतु जो उन्मार्गको देख रहे हैं अर्थात् लक्ष्यसे भ्रष्ट हैं उनका ज्ञान भी निरर्थक है।

भावार्थ -- एक मनुष्य दर्शन मोहनीयका अभाव होनेसे श्रद्धा गुणके प्रकट हो जानेपर लक्ष्य -- प्राप्तव्य मार्गको देख रहा है, परंतु चारित्र मोहका तीव्र उदय होनेसे उस मार्गपर चलनेके लिए असमर्थ है तो भी कहा जाता है कि उसे मार्ग मिल गया, परंतु दूसरा मनुष्य अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता होनेपर भी मिथ्यात्वके उदयके कारण गंतव्य मार्गको न देख उन्मार्गको ही देख रहा है तो ऐसे मनुष्यका वह भारी ज्ञान भी निरर्थक होता है।।१३।।

कुमयकुसुदपसंसा, जाणंता बहुविहाइं सत्थाणि।
सीलवदणाणरहिदा, ण हु ते आराधया होंति।।१४।।

जो नाना प्रकारके शास्त्रोंको जानते हुए मिथ्यामत और मिथ्या श्रुतकी प्रशंसा करते हैं तथा शील, व्रत और ज्ञानसे रहित हैं वे स्पष्ट ही आराधक नहीं हैं।।१४।।

रूवसिरिगव्विदाणं, जुव्वणलावण्णकंतिकलिदाणं।
सीलगुणवज्जिदाणं, णिरत्थयं माणुसं जम्मं।।१५।।

जो मनुष्य सौंदर्यरूपी लक्ष्मीसे गर्वीले तथा यौवन, लावण्य और कांतिसे युक्त हैं, किंतु शीलगुणसे रहित हैं उनका मनुष्य जन्म निरर्थक है।।१५।।

वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु।
वेदेऊण सुदेसु य, तेसु सुयं उत्तमं सीलं।।१६।।

कितने ही लोग व्याकरण, छंद, वैशेषिक, व्यवहार -- गणित तथा न्यायशास्त्रोंको जानकर श्रुतके धारी बन जाते हैं परंतु उनका श्रुत तभी श्रुत है जब उनमें उत्तम शील भी हो।।१६।।

सीलगुणमंडिदाणं, देवा भवियाण वल्लहा होंति।
सुदपारयपउरा णं, दुस्सीला अप्पिला लोए।।१७।।

जो भव्य पुरुष शीलगुणसे सुशोभित हैं उनके देव भी प्रिय होते हैं अर्थात् देव भी उनका आदर करते हैं और जो शीलगुणसे रहित हैं वे श्रुतके पारगामी होकर भी तुच्छ -- अनादरणीय बने रहते हैं।।१७।।

भावार्थ -- शीलवान जीवोंकी पूजा प्रभावना मनुष्य तो करते ही हैं, परंतु देव भी करते देखे जाते हैं। परंतु दुःशील अर्थात् खोटे शीलसे युक्त मनुष्योंको अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता होनेपर भी कोई पूछता नहीं है, वे सदा तुच्छ बने रहते हैं। यहाँ 'अल्प'का अर्थ संख्यासे अल्प नहीं किंतु तुच्छ अर्थ है। संख्याकी अपेक्षा तो दुःशील मनुष्य ही अधिक हैं, शीलवान नहीं।

सव्वे वि य परिहीणा, रूवविरूवा वि वदिदसुवया वि।
सीलं सेसु सुसीलं, सुजीविदं माणुसं तेसिं।।१८।।

जो सभीमें हीन हैं अर्थात् हीन जातिके हैं, रूपसे विरूप हैं अर्थात् कुरूप हैं और जिनकी अवस्था बीत गयी है अर्थात् वृद्धावस्थासे युक्त हैं -- इन सबके होनेपर भी जिनके सुशील है अर्थात् जो उत्तम शीलके धारक हैं उनका मनुष्यपना सुजीवित है -- उनका मनुष्यभव उत्तम है।।

भावार्थ -- जाति, रूप तथा अवस्थाकी न्यूनता होनेपर भी उत्तम शील मनुष्यके जीवनको सफल बना देता है। इसलिए सुशील प्राप्त करना चाहिए।।१८।।

जीवदया दम सच्चं, अचोरियं बंभचेरसंतोसे।
सम्मद्दंसणणाणं, तओ य सीलस्स परिवारो।।१९।।

जीवदया, इंद्रियदमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्तप ये सब शीलके परिवार हैं।।१९।।

सीलं तवो विसुद्धं, दंसणसुद्धी य णाणसुद्धी य।
सीलं विसयाण अरी, सीलं मोक्खस्स सोपाणं।।२०।।

शील विशुद्ध तप है, शील दर्शनकी शुद्धि है, शील ही ज्ञानकी शुद्धि है, शील विषयोंका शत्रु है और शील मोक्षकी सीढ़ी है।।२०।।

जह विशुद्ध लुद्धविसदो, तह थावरजंगमाण घोराणं।
सव्वेसिं पि विणासदि, विसयविसं दारुणं होई।।२१।।

जिस प्रकार विषय, लोभी मनुष्यको विष देनेवाले हैं -- नष्ट करनेवाले हैं उसी प्रकार भयंकर स्थावर तथा जंगम -- त्रस जीवोंका विष भी सबको नष्ट करता है, परंतु विषयरूपी विष अत्यंत दारुण होता है।

भावार्थ -- जिस प्रकार हाथी, मीन, भ्रमर, पतंग तथा हरिण आदिके विषय उन्हें विषकी भाँति नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार स्थावरके विष मोहरा, सोमल आदि और जंगम अर्थात् साँप, बिच्छू आदि भयंकर जीवोंके विष विष सभीको नष्ट करते हैं। इस प्रकार जीवोंको नष्ट करनेकी अपेक्षा विषय और विषमें समानता है, परंतु विचार करनेपर विषयरूपी विष अत्यंत दारुण होता है। क्योंकि विषसे तो जीवका एक भव ही नष्ट होता है और विषयसे अनेक भव नष्ट होते हैं।।२१।।

बार एकम्मि य जम्मे, मरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो।
विसयविसपरिहया णं, भमंति संसारकांतारे।।२२।।

विषकी वेदनासे पीड़ित हुआ जीव एक जन्ममें एक ही बार मरणको प्राप्त होता है परंतु विषयरूपी

विषसे पीड़ित हुए जीव संसाररूपी अटवीमें निश्चयसे भ्रमण करते रहते हैं।।२२।।

णरएसु वेयणाओ, तिरिक्खए माणुएसु दुक्खाइं।
देवेसु वि दोहग्गं, लहंति विसयासता जीवा।।२३।।

विषयासक्त जीव नरकोंमें वेदनाओंको, तिर्यंच और मनुष्योंमें दुःखोंको तथा देवोंमें दौर्भाग्यको प्राप्त होते हैं।।२३।।

तुसधम्मंतबलेण य, जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि।
तवसीलमंत कुसली, खवंति विसयं विसं व खलं।।२४।।

जिस प्रकार तुषोंके उड़ा देनेसे मनुष्योंका कोई सारभूत द्रव्य नष्ट नहीं होता उसी प्रकार तप और शीलसे युक्त कुशल पुरुष विषयरूपी विषको खलके समान दूर छोड़ देते हैं।

भावार्थ -- तुषको उड़ा देनेवाला सूपा आदि तुषध्मत् कहलाता है, उसके बलसे मनुष्य सारभूत द्रव्यको बचाकर तुषको उड़ा देता है -- फेंक देता है उसी प्रकार तप और उत्तम शीलके धारक पुरुष ज्ञानोपयोगके द्वारा विषयभूत पदार्थोंके सारको ग्रहण कर विषयोंको खलके समान दूर छोड़ देते हैं। तप और शीलसे सहित ज्ञानी जीव इंद्रियोंके विषयको खलको समान समझते हैं। जिस प्रकार इक्षुका रस ग्रहण कर लेनेपर छिलका फेंक दिये जाते हैं उसी प्रकार विषयोंका सार जानना था सो ज्ञानी जीव इस सारको ग्रहण कर छिलकेके समान विषयोंका त्याग कर देता है। ज्ञानी मनुष्य विषयोंको ज्ञेयमात्र जान उन्हें जानता तो है परंतु उनमें आसक्त नहीं होता।

अथवा एक भाव यह भी प्रकट होता है कि कुशल मनुष्य विषयको दुष्ट विषयके समान छोड़ देते हैं।।२४।।

वट्टेसु य खंडेसु य, भद्देसु य विसालेसु अंगेसु।
अंगेसु य पप्पेसु य, सव्वेसु य उत्तमं सीलं।।२५।।

इस मनुष्यके शरीरमें कोई एक अंग वृत्त अर्थात् गोल है, कोई खंड अर्थात् अर्धगोलाकार है, कोई भद्र अर्थात् सरल है और कोई विशाल अर्थात् चौड़ा है सो इन अंगोंके यथास्थान प्राप्त होनेपर भी सबमें उत्तम अंग शील ही है।

भावार्थ -- शीलके बिना मनुष्यके समस्त अंगोंकी शोभा निःसार है इसलिए विवेकी जन शीलकी और ही लक्ष्य रखते हैं।।२५।।

पुरिसेण वि सहियाए, कुशमयमूढेहि विसयलोलेहिं।
संसारे भमिदव्वं, अरयघरट्टं व भूदेहिं।।२६।।

मिथ्यामतमें मूढ़ हुए कितने ही विषयोंके लोभी मनुष्य ऐसा कहते हैं कि हमारा पुरुष -- ब्रह्म तो

निर्विकार है। विषयोंमें प्रवृत्ति भूतचतुष्टयकी होती है इसलिए उनसे हमारा कुछ बिगाड़ नहीं है, क्योंकि उस भूतचतुष्टरूप शरीरके साथ पुरुष -- ब्रह्मको भी अरघटकी घड़ीके समान संसारमें भ्रमण करना पड़ता है।

भावार्थ -- जब तक यह जीव शरीरके साथ एकीभावको प्राप्त हो रहा है तब तक शरीरके साथ इसे भी भ्रमण करना पड़ता है। इसलिए मिथ्यामतके चक्रमें पड़कर अपनी विषयलोलुपताको बढ़ाना श्रेयस्कर नहीं है।।२६।।

आदेहि कम्मगंठी, जावद्धा विसयरायमोहेहिं।
तं छिंदंति कयत्था, तवसंजमसीलयगुणेण।।२७।।

विषयसंबंधी राग और मोहके द्वारा आत्मामें जो कर्मोंकी गाँठ बाँधी गयी है उसे कृतकृत्य -- ज्ञानी पुरुष तप संयम और शीलरूप गुणके द्वारा छेदते हैं।।२७।।

उदधी व रदणभरिदो, तवविणयसीलदाणरयणाणं।
सोहे तोय ससीलो, णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो।।२८।।

जिस प्रकार समुद्र रत्नोंसे भरा होता है तो भी तोय अर्थात् जलसे ही शोभा देता है उसी प्रकार यह जीव भी तप विनय शील दान आदि रत्नोंसे युक्त है तो भी शीलसे सहित होता ही सर्वोत्कृष्ट निर्वाणको प्राप्त होता है।

भावार्थ -- तप विनय आदिसे युक्त होनेपर भी यदि मोह और क्षोभसे रहित समता परिणामरूपी शील प्रकट नहीं होता है तो मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती इसलिए शीलको प्राप्त करना चाहिए।।२८।।

सुणहाण गद्दहाण य, गोपसुमहिलाण दीसदे मोक्खो।
जे सोधंति चउत्थं, पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहिं।।२९।।

सब लोग देखो, क्या कुत्ते, गधे, गाय आदि पशु तथा स्त्रियोंको मोक्ष देखनेमें आता है? अर्थात् नहीं आता। किंतु चतुर्थ पुरुषार्थ अर्थात् मोक्षका जब साधन करते हैं उन्हींका मोक्ष देखा जाता है।

भावार्थ -- बिना शीलके मोक्ष नहीं होता है। यदि शीलके बिना भी मोक्ष होता तो कुत्ते, गधे, गाय आदि पशु और स्त्रियोंको भी मोक्ष होता, परंतु नहीं होता। यहाँ काकु द्वारा आचार्यने 'दृश्यते' क्रियाका प्रयोग किया है इसलिए उसका निषेधपरक अर्थ होता है। अथवा 'चउत्थं' के स्थानपर 'चउक्कं' पाठ ठीक जान पड़ता है, उसका अर्थ होता है -- क्रोधादि चार कषायोंको शोधते हैं -- दूर करते हैं अर्थात् कषायोंको दूर कर शीलसे वीतराग भावसे सहित होते हैं वे ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं।।२९।।

जइ विसयलोलएहिं, णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो।
तो सो सुरत्तपुत्तो, दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं।।३०।।

यदि विषयोंके लोभी ज्ञानी मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर सकते होते तो दशपूर्वोंका पाठी रुद्र नरक

क्यों जाता?

भावार्थ -- विषयोंके लोभी मनुष्य शीलसे रहित होते हैं अतः ग्यारह अंग और नौ पूर्वका ज्ञान होनेपर भी मोक्षसे वंचित रहते हैं। इसके विपरीत शीलवान् मनुष्य अष्ट प्रवचन मातृकाके जघन्य ज्ञानसे भी अंतर्मुहुर्तके भीतर केवलज्ञानी होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। शीलकी -- वीतरागभावकी कोई अद्भुत महिमा है।।३०।।

जइ णाणेण विसोहो, सीलेण विणा बुहेहि णिद्दिट्ठो।
दस्स पुव्विस्स य भावो, ण किं पुण णिम्मलो जादो।।३१।।

यदि विद्वान् शीलके बिना मात्र ज्ञानसे भावको शुद्ध हुआ कहते हैं तो दश पूर्वके पाठी रुद्रका भाव निर्मल -- शुद्ध क्यों नहीं हो गया?

भावार्थ -- मात्र ज्ञानसे भावकी निर्मलता नहीं होती। भावकी निर्मलताके लिए राग, द्वेष और मोहके अभाव की आवश्यकता होती है। राग, द्वेष और मोहके अभावसे भावकी जो निर्मलता होती है वही शील कहलाती है। इस शीलसे ही जीवका कल्याण होता है।।३१।।

जाए विसयविरत्तो, सो गमयदि णरयवेयणां पउरां।
ता लेहदि अरुहपयं, भणियं जिन वड्ढमाणेण।।३२।।

जो विषयोंसे विरक्त है वह नरककी भारी वेदनाको दूर हटा देता है तथा अरहंतपदको प्राप्त करता है ऐसा वर्धमान जिनेंद्रने कहा है।

भावार्थ -- जिनागममें ऐसा कहा है कि तीसरे नरक तकसे निकलकर जीव तीर्थंकर हो सकता है सो सम्यग्दृष्टि मनुष्य नरकमें रहता हुआ भी अपने सम्यक्त्वके प्रभावसे नरककी उस भारी वेदनाका अनुभव नहीं करता -- उसे अपनी नहीं मानता और वहाँसे निकलकर तीर्थंकर पदको प्राप्त होता है, यह सब शीलकी ही महिमा है।।३२।।

एवं बहुप्पयारं, जिणेहि पच्चक्खणाणदरिसीहिं।
सीलेण य मोक्खपयं, अक्खातीदं च लोयणाणेहि।।३३।।

इस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान और प्रत्यक्ष दर्शनसे युक्त लोकके ज्ञाता जिनेंद्र भगवान्ने अनेक प्रकारसे कथन किया है कि अतींद्रिय मोक्षपद शीलसे प्राप्त होता है।।३३।।

सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयारमप्पाणं।
जलणो वि पवणसहिदो, डहंति पोराणयं कम्मं।।३४।।

सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, तप और वीर्य ये पाँच आचार पवनसहित अग्निके समान जीवोंके पुरातन कर्मोंको दग्ध कर देते हैं।।३४।।

णिद्दड्ढअट्ठकम्मा, विसयविरत्ता जिदिंदिया धीरा।
तवविणयसीलसहिदा, सिद्धा सिद्धिगदिं पत्ता।।३५।।

जिन्होंने इंद्रियोंको जीत लिया है, जो विषयोंसे विरक्त हैं, धीर हैं अर्थात् परिषहादिके आनेपर विचलित नहीं होते हैं जो तप विनय और शीलसे सहित हैं ऐसे जीव आठ कर्मोंको समग्ररूपसे दग्ध कर सिद्धि गतिको प्राप्त होते हैं। उनकी सिद्ध संज्ञा है।।३५।।

लावण्णसीलकुसलो, जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स।
सो सीलो य महप्पा, भमित्थ गुणवित्थरो भविए।।३६।।

जिस मुनिका जन्मरूपी वृक्ष लावण्य है और शीलसे कुशल है वह शीलवान् है, महात्मा है तथा उसके गुणोंका विस्तार लोकमें व्याप्त होता है।

भावार्थ -- जिस मुनिका जन्म जीवोंको अत्यंत प्रिय है तथा समताभावरूप शीलसे सुशोभित है वही मुनि शीलवान् कहलाता है और उसीके गुण लोकमें विस्तारको प्राप्त होते हैं।।३६।।

णाणं झाणं जोगो, दंसणसुद्धी य वीरियावत्तं।
सम्मत्तदंसणेण य, लहंति जिणसासणे बोहिं।।३७।।

ध्यान, योग और दर्शनकी शुद्धि -- निरतिचार प्रवृत्ति ये सब वीर्यके आधीन हैं और सम्यग्दर्शनके द्वारा जीव जिनशासनसंबंधी बोधि -- रत्नत्रयरूप परिणतिको प्राप्त होते हैं।

भावार्थ -- आत्मामें वीर्यगुणका जैसा विकास होता है उसीके अनुरूप ज्ञान, ध्यान, योग और दर्शनकी शुद्धता होती है तथा सम्यग्दर्शनके द्वारा जीव जिनशासनमें बोधि -- रत्नत्रयका जैसा स्वरूप बतलाया है उसरूप परिणतिको प्राप्त होते हैं।।३७।।

जिणवयणगहिदसारा, विसयविरत्ता तवोधणा धीरा।
सीलसलिलेण ण्हावा, ते सिद्धालयसुहं जंति।।३८।।

जिन्होंने जिनेंद्रदेवके वचनोंसे सार ग्रहण किया है, जो विषयोंसे विरक्त हैं, जो तपको धन मानते हैं, धीर वीर हैं और जिन्होंने शीलरूपी जलसे स्नान किया है वे सिद्धालयके सुखको प्राप्त होते हैं।।३८।।

सव्वगुणखीणकम्मा, सुहदुक्खविवज्जिदा मणविसुद्धा।
पप्फोडियकम्मरया, हवंति आराहणापयडा।।३९।।

जिन्होंने समस्त गुणोंसे कर्मोंको क्षीण कर दिया है, जो सुख और दुःखसे रहित हैं, मनसे विशुद्ध हैं और जिन्होंने कर्मरूपी धूलिको उड़ा दिया है ऐसे आराधनाओंको प्रकट करनेवाले होते हैं।।३९।।

अरहंते सुहभत्ती, सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं।
सीलं विसयविरागो, णाणं पुण केरिसं भणियं।।४०।।

अरहंत भगवान्में शुभ भक्ति होना सम्यक्त्व है, यह सम्यक्त्व तत्त्वार्थश्रद्धानसे अत्यंत शुद्ध है और विषयोंसे विरक्त होना ही शील है। ये दोनों ही ज्ञान हैं, इनसे अतिरिक्त ज्ञान कैसा कहा गया है?

भावार्थ -- सम्यक्त्व और शीलसे सहित जो ज्ञान है वही ज्ञान, ज्ञान है। इनसे रहित ज्ञान कैसा? अन्य मतोंमें ज्ञानको सिद्धिका कारण कहा गया है परंतु जिस ज्ञानके साथ सम्यक्त्व तथा शील नहीं है वह अज्ञान है, उस अज्ञानरूप ज्ञानसे मुक्ति नहीं हो सकती।।४०।।

इस प्रकार कुंदकुंदाचार्य विरचित शीलप्राभृत समाप्त हुआ।

***